श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष-९ फरवरी-१९९० अंक २

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

५१. श्री बी० भी० नागोरी कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा - समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल -खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ - कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन - कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका —डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, रांची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्तिनाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे – दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप —रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा - छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु० प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनंदन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे - सिवनी मालवा (म० प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे हेमनानी—नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ९ फरवरी—१९९० अंक — २

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

पौधों में साधारणतः पहले फूल आते हैं, बाद में फल, परन्तु लौकी, कुम्हड़े आदि की बेल में पहले फल और उसके बाद फूल होते हैं। इसी तरह साधारण साधकों को तो साधना करने के बाद ईश्वर लाभ होता है, किन्तु जो नित्यसिद्ध होते हैं उन्हें पहले ही ईश्वर लाभ हो जाता है, साधना पीछे से होती है।

(२)

जब आग जलती है तो न जाने कहाँ से फतिंगे आकर उसमें गिरते हुए अपने प्राणों का बलिदान देने लगते हैं; आग कभी फतिंगों को बुलाने नहीं जाती। सिद्ध पुरुषों का प्रचार भी इसी तरह का होता है। वे किसी को बुलाने नहीं जाते, फिर भी न जाने कहाँ से सैकड़ों हजारों लोग उनके निकट उपदेश ग्रहण करने अपने आप आने लगते हैं।

(३)

गीली दियासलाई को तुम कितना भी घिसो, वह नहीं जलती, पर सूखी दियासलाई एक बार घिसते ही तुरन्त जल जाती है। सच्चे भक्त का मन सूखी दियासलाई के समान होना है, थोड़ा ईश्वर का नाम सुनते ही उसमें प्रेम-भक्ति की ज्योति जल उठती है; परन्तु संसारी व्यक्ति का मन गीली दियासलाई की भाँति काम-कांचन की आसक्ति में भींगा होता है, उसे ईश्वर की महिमा कितनी भी सुनाई जाए, उसमें भगवद्भक्ति की वह्नि नहीं सुलगाई जा सकती।

॥ ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय ॥

॥ अथ श्रीरामकृष्ण चालीसा ॥

श्री गुरु पद-अम्बुज परसि, सिर धरि धूरि पराग ।
रामकृष्ण यश चिर धवल, बरनउँ अति अनुराग ॥
ज्ञान ध्यान नहिं योग बल, कर्म धर्म नहिं एक ।
रामकृष्ण मों दीन को, दीजै विमल विवेक ॥

चौपाई

जय श्रीरामकृष्ण भगवाना । करुणामय जय कृपा निधाना ॥१
खुदीराम के तनय दुलारे । चन्द्रामणि माँ के दृग-तारे ॥२
गया गमन कीन्हें तव ताता । सपने विष्णु कही यह बाता ॥३
तुम्हारे गेह लेब अवतारा । धरम गलानि हरब संसारा ॥४
विष्णु सत्व गुण लै तनु धारे । खुदीराम के गेह पधारे ॥५
मन्दिर मँह शिव ज्योति सुभाई । चन्द्रामणि के उदर समाई ॥६
शिव प्रकटे धरि रूप गदाई । धन्य हुईं चन्द्रामणि माई ॥७
जनम लेत नव रूप दिखाये । सकल देह निज भसम रमाये ॥८
बक पाँती लखि नभ घन माँही । सहज समाधि लग्यो पल माँही ॥९
शिव लीला करि तुम शिव भयऊ । देखि सकल चित विस्मित भयऊ ॥१०
जब यज्ञोपवीत क्षण भयऊ । धनी कमारिन पहँ तुम गयऊ ॥११
प्रथम भीख लै बाल गुसाईं । भिक्षा माँ की दियो बड़ाई ॥१२
सत्य संधु प्रभु तुम करुणाकर । तज्यो जाति कुल मान भयंकर ॥१३
शिशु लीला करि दीन दयाला । गये दक्षिणेश्वरहि कृपाला ॥१४
भवतारिणी पूजि बहु भाँती । दरस हेतु बिलखेउ दिन राती ॥१५
निज बलि देन खड्ग लै धायो । प्रकटी माँ, दरसन-सुख पायो ॥१६
सारदेश्वरी की गहि पाणी । भयउ युगल जनु शम्भु-भवानी ॥१७
कंचन काम तोहि नहिं व्यापा । शुद्ध बुद्ध अकलुष निष्पापा ॥१८
ज्ञान भक्ति अरु कर्म अशेषा । प्रकट भये धरि तुम्हरे वेषा ॥१९

जहँ तुम्ह रहेउ बहेउ रस धारा। अमित हर्ष आनन्द अपारा ॥२०
बहु देवन्ह तुम्हरे पहिं आयो। दर्शन दै तुम्ह माँहि समायो ॥२१
राम कृष्ण प्रकटे तव माँही। कलियुग महँ तुम सम कोउ नाहीं ॥२२
तुम्ह पहँ आई नरेन अधीरा। भयउ असंशय निर्भय धीरा ॥२३
सहधर्मिणि पद धरि जप माला। सौंप्यो तप-फल सकल कृपाला ॥२४
सकल सिद्धि नरेन्द्र पर वारी। आपु अकिंचन भयउ भिखारी ॥२५
नील कमल सम श्यामल गाता। सस्मित मुख आनन्द विधाता ॥२६
समाधिस्थ पद्मासन धारे। अर्ध मुदित दृग परम सुखारे ॥२७
पद्म पलास युगल तव नयना। परम मधुर सुर मोहक बयना ॥२८
तुम ही भक्ति भक्त भगवन्ता। अज अनादि अनवद्य अनन्ता ॥२९
जीव माँहि शिव दियो दिखाई। सकल शक्ति तुम्ह महँ प्रकटाई ॥३०
सर्व धर्म को दियो प्रतिष्ठा। जय जय जय अवतार वरिष्ठा ॥३१
गहि तव शरण गिरीश अपावन। भयउ अकाम अमल-चित पावन ॥३२
लाटू गँवइ पाइ तव नेहा। भये सिद्ध ब्रह्मज्ञ विदेहा ॥३३
तारक शरत आदि कत प्राणी। तुम्हरें कृपा भयौ विज्ञानी ॥३४
करि तव भजन नरेन्द्र सुजाना। विश्व विजय किन्हीं जग जाना ॥३५
को जग तव करि सकहिं बड़ाई। वेदहुँ सकइ न तव गुण गाई ॥३६
जो श्रद्धा सों तव गुण गावै। मुक्त होइ चारहुँ फल पावै ॥३७
तव जप ध्यान नित्य जो करई। माँ सारदा तासु दुःख हरई ॥३८
पढ़ै जो रामकृण चालीसा। तासु कलेश हरहिं जगदीशा ॥३९
मो पर नाथ करहुँ निज दाया। हरहुँ विकार मोह मद माया ॥४०

दोहा

रामकृष्ण माँ सारदा, सहित विवेकानन्द।
बसहुँ सदा मम हृदय महुँ, देहुँ परम आनन्द ॥

सारदावर रामकृष्ण की जय !
जननी सारदामणि की जय !!
स्वामीजी महाराज की जय !!!

□

श्री रामकृष्ण : हमारी अस्मिता

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

अक्सर कुछ लोग यह प्रश्न कर बैठते हैं कि श्री रामकृष्ण की भगवत्ता में सन्देह नहीं रहने पर भी वे हमारे जीवन के लिए कहाँ तक उपयोगी हैं ? आज हमारे जीवन-मूल्यों में तेजी से बदलाव आता जा रहा है। कल की वस्तु आज पुरानी हो जाती है। हमारे परिवेश और आवेष्टन नित्य अपना केंचुल उतार कर कुछ नयापन और कुछ ताजापन के मोहपाश में आबद्ध होते जा रहे हैं। अपने जीवन के सम्बन्ध में हमारी दृष्टिभंगी में नित नूतन परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में श्री रामकृष्ण हमारे लिए कितने सार्थक हैं, कितने मूल्यवान हैं ?

ऐसे प्रश्न हमें झकझोरते नहीं। मनुष्य है, तो कुछ प्रश्न करेगा ही। मनुष्य का धर्म ही है चिन्तन करना, शंकाएँ करना, प्रश्न करना। प्रश्न के दो रूप होते हैं। जब प्रश्न बुद्धि के चमत्कार-प्रदर्शन के लिए होता है, तर्क-कौशल के प्रकाश के लिए होता है तब वह एक प्रकार का आतंक खड़ा करता है। दूसरे लोग ऐसे प्रश्न से भयभीत होकर उत्तरदाता की ओर ऐसे उन्मुख होते हैं जैसे किसी योद्धा की ओर देख रहे हों। दोनों ओर से प्रश्न और उत्तर के रूप में मानो वाण का संधान होता है। ऐसे प्रश्नों को मैं आतंकवादी प्रश्न कहता हूँ। और ऐसे प्रश्नों का अंत एक मनोविनोद की गंध छोड़कर हो जाता है। किन्तु कभी कभी किसी सत्य के संधान में साधक को बाधा आन खड़ी होती है तब उसके भीतर प्रश्न खड़ा होता है और वह किसी सत्योपलब्ध व्यक्ति के समक्ष अपने प्रश्न प्रस्तुत करता है। इस प्रश्न के मूल में आत्मिक पिपासा, आन्तरिक आकुलता और वास्तविक विकलता होती है। ऐसी स्थिति में प्रश्न अपनी कर्कशता के काँटों का अतिक्रमण कर जिज्ञासा का फूल बन जाता है। ऐसे ही कुछ प्रश्न नचिकेता ने यमराज से किये थे, जनक ने अष्टावक्र से किये थे, अर्जुन ने श्रीकृष्ण से (महाभारत युद्ध के दौरान) किये थे और नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) ने श्री रामकृष्ण से किये थे। ये प्रश्न मानव जाति के लिए शाश्वत मूल्यवान होकर अखंड मंगलकारी हो जाते हैं। ऐसे ही प्रश्नों के उत्तर से कठोपनिषद, अष्टावक्र संहिता, श्रीमद्भगवद्गीता और श्री रामकृष्ण-वचनामृत सरीखे अमृत-ग्रंथों का उपहार विश्व मानवता को मिला है।

यह सच है कि युगीन परिस्थितियों के अनुसार हमारे सौन्दर्य-बोध, आचार-शैली और जीवन-शिल्प में परिवर्तन होते ही रहते हैं। ये परिवर्तन हमारी जीवंतता के ही परिणाम हैं। पर कुछ ऐसे भी मूल्य हैं जिनमें कभी पुरातना नहीं आती, पुरानापन नहीं आता। वे शाश्वत मूल्य हैं। इन्हीं मूल्यों की आधार शिला पर हमारी संस्कृति की अट्टालिका खड़ी रहती है और आसानी से युगीन विचारों की आँधी झेल लेती है। सूरज रोज उगता और डूबता है। पर वह कभी पुराना नहीं पड़ता। चाँद, सितारे कभी पुराने नहीं पड़ते। गंगा कभी बासी नहीं होती। हिमालय कभी पुराना नहीं पड़ता। झड़ने कभी नीरस नहीं होते। क्यों ? इसलिए कि वे हमारे अस्तित्व से जुड़े हैं ? उनके बिना हमारा अस्तित्व टिक नहीं सकता। वे हमारे जीवन के प्राणतत्व हैं। वे हमारी अस्मिता हैं।

अनन्त भावराज्य के अधिराज श्री रामकृष्ण देव भी हमारी चेतना के केन्द्र विन्दु हैं। उनके जीवन और प्राणसंचारी संदेश हमारे अस्तित्व के अविभाज्य अंग हैं। श्री रामकृष्ण हमारी अस्मिता हैं।

बात सन् १९७२ ई० की है। रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में श्री रामकृष्ण का जन्मोत्सव

मनाया जा रहा था। इस अवसर पर आयोजित जन सभा को सम्बोधित करने तत्कालीन प्रतिरक्षा मंत्री श्री जगजीवन राम आये थे। आश्रम के सचिव ने उनका परिचय देते हुए कहा "हमारे रक्षा मंत्री बहुत व्यस्त व्यक्ति हैं, फिर भी, उन्होंने समय निकालकर यहाँ श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में दो शब्द कहने को पधारने की कृपा की है।" जब श्री जगजीवन राम जी बोलने उठे तो उन्होंने कहा—"मैं यहाँ भारत के प्रतिरक्षा मंत्री का कार्य करने नहीं आया हूँ, बल्कि श्रीरामकृष्ण को मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने आया हूँ। और मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि सारा विश्व श्रीरामकृष्ण के उपदेशों को स्वीकार कर ले तो किसी भी देश को मेरी तरह प्रतिरक्षा मंत्री रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं होगी।"

श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में यह एक सही समझ है और श्री जगजीवन राम जी ने उस दिन श्रीरामकृष्ण के विषय में बड़े महत्व की बात कही। आज सारे विश्व में जो तनाव है, जो सामरिक तैयारियाँ हैं, मारक अस्त्रों की जो भरमार है उससे मानव जाति का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो गया है। इस संदर्भ में श्री रामकृष्ण के उपदेश अखिल मानवता के ताप तप्त हृदय पर चंदन का शीतल लेप प्रमाणित होते हैं। इन उपदेशों में मानव-मानव के बीच के भेद की दीवारें स्वत: ढह जाती हैं और सभी मनुष्य एक आत्मिक प्रेम के रेशमी सूत्र में आबद्ध होकर एक प्राण हो जाते हैं।

राजनैतिक कारणों से विश्व में हाल के वर्षों में जो जघन्य हत्याएँ हुई हैं उनसे कहीं अधिक नृशंस हत्याएँ धर्म की संकीर्णता के कारण घटी हैं। धार्मिक संकीर्णता और द्वेष ने कई देशों को तोड़ा है, कई जातियों का संहार किया है और कई निर्दोष प्राणियों को मृत्यु के मुख में ढकेल दिया है। इस से घबड़ाकर इधर कई देशों के राजनायकों ने अपने देश को धर्म विहीन ही घोषित कर दिया। रूस, चीन आदि इसके उदाहरण हैं। किन्तु श्री रामकृष्ण ने धर्म की राख को झाड़कर शुद्ध धर्म को अपनाने का आग्रह किया। उनकी दृष्टि में सभी धर्म ईश्वर के यहाँ पहुँचने के सही मार्ग हैं। हम किसी धर्म को सही ढंग से अपनाकर ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। उनके इस कथन में - जतो मत ततो पथ — केवल शास्त्र का शुष्क उद्धरण नहीं बल्कि अनुभूति की प्रामाणिकता है। सारे धर्म पथ उनमें समा गये हों जैसे। उन्होंने अपने पचास वर्षों के लघु जीवन में भारतवर्ष की पाँच हजार वर्षों की आध्यात्मिक साधना को जी लिया था।

श्री रामकृष्ण ने धर्म को अनुभूति का मार्ग सिद्ध किया। धर्म मनुष्य की अनिवार्यता है। उसके विना वह जी नहीं सकता। यही कारण है कि आज धर्म विहीन देशों में धर्म का ज्वार उठने लगा है और साम्यवाद का स्थापित तंत्र जर्जर दीवार की भाँति ढहने लगा है।

दुर्भाग्यवश श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के अविर्भाव के पूर्व तक हमने धर्मसाधना को अपने व्यावहारिक जीवन से विलग कर रखा था। हमने सोच लिया था कि हम चाहे जैसा भी जीवन जी सकते हैं, जितने भी पापाचार-दुराचार कर सकते हैं, झगड़े-मुकदमे कर सकते हैं, दूसरों का शोषण कर सकते हैं, हत्याएँ,लूट-खसोट कर सकते हैं, कर-वंचना कर सकते हैं, फिर भी हमारे सारे दुष्कर्म धुल जायेंगे यदि हम किसी मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर, गुरुद्वारे में चले गये, प्रतिमा की पूजा कर ली, नमाज अदा कर ली या कीर्तन-भजन कर लिये और दान-पात्र में कुछ चढ़ावे डाल दिये। श्री रामकृष्ण ने हमें धर्म के वास्तविक रूप का दर्शन कराया। उन्होंने बताया कि समाज में लोगों की सेवा करना और मन्दिर में ईश्वर की उपासना करना – ये दोनों दो वस्तुएँ नहीं हैं। उन्होंने कहा, आँखें मूँदकर ध्यान

करने में ईश्वर हैं और आँखों के खोलने पर भी ईश्वर हैं। तुम मन्दिर में जाओ और ईश्वर की पूजा करो और तब बाहर आकर, वहाँ से जो प्राप्त किया है उसे लोगों की प्रीतिपूर्ण सेवा में अर्पित कर दो। शिव दृष्टि से जीव की सेवा करने का जो बीजमंत्र श्री रामकृष्ण ने हमें दिया है उसे जीवन में ढालकर हम अपना और अपने समाज का आज सर्वाधिक मंगल कर सकते हैं।

ईश्वर-प्राप्ति को जीवन का उद्देश्य मानते थे श्री रामकृष्ण। किन्तु संसार की अपेक्षा भी वे नहीं करते थे। वे संसार और ईश्वर, जगत् और जगदाधार, भौतिकता और नैतिकता में समन्वय करने की शुभदृष्टि हमें देते हैं। वे कहते हैं – 'संसार में रहो, इसमें कोई हानि नहीं, पर संसार को अपने में मत रहने दो। नाव जल में रहे, पर जल नाव में नहीं रहे, नहीं तो वह डूब जायगी।"

आज हम संकीर्ण जातिवाद के रोग से जितना ग्रस्त हैं उतना कभी नहीं थे। इसकी क्या दवा है ? श्री रामकृष्ण कहते हैं "एक उपाय से जाति-भेद समाप्त हो जायगा। वह उपाय है भक्ति। भक्तों की जाति नहीं होती। भक्ति नहीं होने से ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है और भक्ति होने पर चाण्डाल चाण्डाल नहीं है।" तो यह है उनकी दृष्टि। उनका निज का जीवन भी उस विशाल वट वृक्ष की भाँति है जिसके नीचे सभी जातियों के प्राणी ऊँच-नीच का भेद त्यागकर एक साथ एकात्म भाव से निवास करते हैं। उनका जीवन मंदाकिनी के उस अभय घाट सा है जहाँ बाघ और मेमने एक साथ जीवन-जल ग्रहण करते हैं। हम देखते हैं कि स्वयं ब्राह्मण के उच्च कुल में उत्पन्न होकर भी वे चीनू शांखारी (शंख की चूड़ि आदि बेचने वाला) के हाथों खाना खाते हैं, सुनारों के घर का खाना खाते हैं, धनी लुहारिन से प्रथम भिक्षा लेकर अपने उपनयन में उसे भिक्षा माता बनाते हैं, अपना हुक्का नरेन्द्र (कायस्थ) को पीने की छूट देते हैं और रसिक मेहतर का पाखाना अपने लम्बे बालों से साफ करते हैं। कहाँ है जाति का गौरव ? उनके शिष्यों में भी ब्राह्मणेतर जाति के ही अधिक शिष्य हैं। लाटू जैसा गड़ेरिया भी उनका शिष्य होकर ब्रह्मज्ञ हो सकता है। जाति भेद का कचड़ा श्री रामकृष्ण की ज्ञानाग्नि में जल कर भस्म हो जाता है। यह है आज के लिए श्रीरामकृष्ण का संदेश। जातियाँ तो रहेंगी ही और उन्हें रहना भी चाहिए पर वे समाज का भूषण बनकर रहें दूषण बनकर नहीं—यह जीवन शिल्प देते हैं हमें श्रीरामकृष्ण।

श्री रामकृष्ण धन को भगवान की सम्पति और धन के स्वामी को भगवान की सम्पत्ति का न्यासी (ट्रस्टी) मानते थे। उनकी मान्यता यह है कि धनवान व्यक्ति अपने धन का उपयोग निजी भोग के उपकरण जुटाने में न कर लोक कल्याण में करें। काशी जाने के मार्ग में गरीब संथालियों को देखकर ही वे कह उठते हैं—"ये ही मेरे शिव हैं। इनका कोई नहीं है। इन्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।" गरीबों और दुःखियों के लिए यह अनुभूति, यह संवेदना और यह त्याग भाव अपनाकर ही धनिक वर्ग समाज में संतुलन बनाये रख सकता है।

आज देश की एकता और अखंडता खतरे में है। पंजाब और कश्मीर में घटने वाली दैनिक हिंसक घटनाएँ, आतंकवादियों के नृशंस, क्रूर और पैशाचिक कर्म हमारी सभ्यता और संस्कृति की गौरवोज्वल परंपरा को ध्वस्त कर रहे हैं। क्षेत्रीयता और साम्प्रदायिकता के भावों ने हमें नर-पशु बना दिया है। श्रीरामकृष्ण का जीवन और संदेश यहां भी हमारे अंधकार से भरे पथ पर आलोक प्रदान करते हैं। वे स्वयं राष्ट्र की भावात्मक एकता के ज्वलंत जीवंत एवं मूर्त प्रतीक थे। सन् १८९३ ई० में अमेरिका में आयोजित जिस धर्म सभा में भाग लेकर उनके प्रिय शिष्य नरेन्द्रनाथ

(स्वामी विवेकानन्द) ने समग्र विश्व को उसके मूल से झकझोर दिया था उसके पूर्व ही हिन्दू धर्म की समस्त साधना पद्धतियों के अतिरिक्त ईसाई और इस्लाम धर्मों की भी साधना कर श्री रामकृष्ण स्वयं में एक विश्व धर्म सभा (Parliament of Relegions) हो गये थे। इस प्रकार विश्व के समग्र धर्मों में एकता और समन्वय लाने का उन्होंने विलक्षण प्रयास किया था। उन्होंने विभिन्न धर्मों की एकता और सत्यता की उद्घोषणा ही नहीं की बल्कि उन्हें अपने धरातल पर जिया भी। स्वामी विवेकानन्द इसी तथ्य को निरूपित करते हुए कहते हैं कि हमें अन्य धर्मों को सहना नहीं बल्कि स्वीकार करना चाहिए। यही है एक मात्र उपाय धार्मिक उन्मादों के समापन का।

महर्षि अरविन्द कहते हैं: भारत में सदा राष्ट्रीय जागरण के पहले धार्मिक जागरण होता रहा है। शंकराचार्य उस लहर की शुरुआत थे जिसने सम्पूर्ण देश को आतमसात कर लिया, जिसकी पराकाष्ठा के रूप में बंगाल में चैतन्य, पंजाब में सिख गुरु, महाराष्ट्र में शिवाजी और दक्षिण में रामानुज और माधवाचार्य आये। इनमें से प्रत्येक के द्वारा एक जन समूह आत्मानुभूति, राष्ट्रीय ऊर्जा और अपनी एकता की चेतना में उठ खड़ा हुआ। श्रीरामकृष्ण एक व्यक्ति में इन सभी नेताओं के समन्वय का प्रतिनिधित्व करते हैं। निष्कर्ष यह है कि उनके समय के आन्दोलन अतीत के प्रान्तीय एवं विखंडित आन्दोलनों को और अधिक संगठित और एक कर देंगे।"

श्रीरामकृष्ण पुनः जन्म क्यों नहीं लेते, इस प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए श्री अरविन्द कहते हैं: विश्व आगत पाँच सौ वर्षों तक श्री रामकृष्ण परमहंस के समान व्यक्ति के दुबारे जन्म को वहन नहीं कर सकता है। अपने विचारों का जो पुंज उन्होंने छोड़ रखा है उसे पहले अनुभव के धरातल पर रूपांतरित करना होगा; जो आध्यात्मिक ऊर्जा उन्होंने हमें प्रदान की है उसे उपलब्धि में ढालना होगा। जब तक यह नहीं होता, तब तक हमें और अधिक की माँग करने का क्या अधिकार है? हम और अधिक लेकर क्या करेंगे?

वस्तुतः श्रीरामकृष्ण का जीवन और संदेश आज के व्यक्ति और समाज के लिए अपरिहार्य हो गये हैं। समस्याओं के जिस सिन्धु ज्वार में हम डूब-उतरा रहे हैं उसमें वे ही हमारे उद्धार के एकमात्र जलपोत हैं। मरण-मन्दिर के द्वार पर खड़े हम असहाय मानवों के लिए एकमात्र वे ही अमृत-सेतु हैं। वे हमारी अस्मिता हैं। उनके सिवा हमें कोई विकल्प नहीं है।

मित्रो, मैं आप सब के मंगल के लिए महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में श्रीरामकृष्णदेव को अपनी आन्तरिक प्रणति निवेदित करता हूँ।

बहु साधकेर बहु साधनार धारा
धेयाने तोमार मिलित हये छे तारा।
तोमार जीवने असीमेर लीला पथे
नूतन तीर्थ रूप निलो ए जगते;
देश विदेशेर प्रणाम आनिलो टानि
सेथाय आमार प्रणति दिलाम आनि।

अर्थात्, "अनेक साधकों की अनेक साधनाओं की धाराओं ने तुम्हारे ध्यान में स्वयं को मिला दिया। असीम के लीला पथों ने तुम्हारे जीवन में एक नये तीर्थ के रूप में इस संसार में आकार ग्रहण किया। देश-विदेशों के लोगों के प्रणाम तुम्हारे जिन चरणों पर निवेदित होते हैं वहीं मैं भी अपनी प्रणति अर्पित करता हूँ।" जय श्रीरामकृष्ण!

'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्'

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन

[पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महाध्यक्ष हैं। श्रीरामकृष्ण आश्रम, पूर्णिया में १ अक्टूबर, १९८५ को उनके द्वारा प्रदत्त प्रवचन बंगला मासिक 'उद्बोधन' की शारदीया संख्या (आश्विन, १३९५) में प्रकाशित हुआ था। उसी प्रवचन का प्रस्तुत अनुवाद यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं डॉ० केदारनाथ लाभ—सं०]

हमलोग प्रायः कहते हैं कि हमलोगों के परिवेश और परिस्थिति से ऐसी अनेक प्रकार की बाधाएँ-प्रतिकूलताएँ आदि उपस्थित होती रहती हैं कि हम भगवान का स्मरण-भजन नहीं कर पाते हैं। हमलोग यह भूल जाते हैं कि हमलोग ही परिवेश की सृष्टि करते हैं, परिवेश हमलोगों की सृष्टि नहीं करता। एक ही परिवेश में विभिन्न मनुष्यों के ऊपर उसकी प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। यदि ईश्वर के प्रति हमलोगों की ऐकान्तिक भक्ति-श्रद्धा रहे तो परिवेश की समस्त प्रतिकूलताओं और विघ्नों का अतिक्रमण कर हम उनकी ओर अग्रसर हो सकते हैं। वे अनन्त शक्तिमान हैं। उनकी शक्ति ही मनुष्यों में संचारित होती है। हमलोग अपनी शक्ति से कुछ नहीं करते, उनकी शक्ति से ही सब कुछ करते हैं। हम सब स्वयं को क्षुद्र मानकर उस शक्ति से स्वयं को वंचित कर लेते हैं। उनकी कृपा सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु उस कृपा को प्राप्त करने के लिए हमलोग अपने हृदय को उन्मुक्त नहीं रखते। जैसे भरे दिन में अपने घर के दरवाजे-खिड़कियों को बन्दकर यदि हम कहें कि घर अन्धकार से भरा है, उसी प्रकार ईश्वर के प्रकाश के सर्वत्र फैले रहने पर भी हमलोग अपने हृदय का द्वार बन्द किए रहते हैं और कहते हैं कि यहाँ आश्रम नहीं है, मठ-मन्दिर नहीं है, भगवान की कथा सुनने के लिए कोई स्थान नहीं है। इस नेति वाचक मनोभाव के कारण हम जो कुछ सोचेंगे सब 'नहीं' हो जायेंगे। और ईश्वर सर्वत्र हैं, इस आस्तिक बुद्धि से यदि हम घोर अन्धकारपूर्ण जंगल में भी बैठे रहें तो वह जंगल भी ईश्वर की आभा से आलोकित हो जायगा। इस धारणा को हमें दृढ़तापूर्वक पकड़े रहना होगा। उन्हें (ईश्वर से) अपने हृदय में प्रतिष्ठापित कर पाने से ही हम देख सकेंगे कि वे बाहर भी भली भाँति प्रतिष्ठित हैं। वे सर्वव्यापी हैं, किन्तु हमलोग अपनी अज्ञानता के कारण उनकी उपस्थिति का अनुभव नहीं कर पाते हैं; इसी से कहता हूँ कि परिवेश हमलोगों के लिए प्रतिबन्धक नहीं है, परिवेश का हवाला देकर हमलोग स्वयं अपने को छलते हैं। श्रीरामकृष्ण के भावादर्श से यह बात हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

दो-चार व्यक्ति यदि श्रीरामकृष्ण के भाव को दृढ़तापूर्वक पकड़कर अपना जीवन व्यतीत करें, तो उनके प्रभाव से धीरे-धीरे सारा देश प्रभावित होगा। बरसात के बादल जिस प्रकार खुले हाथों चारो ओर जल बरसते हैं, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण की करुणा की सर्वत्र वर्षा हो रही है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमें लगता है कि वे हम पर कृपा नहीं कर रहे हैं। उनकी करुणा का अनुभव करने के

लिए आन्तरिक आग्रह और प्रस्तुति की आव-श्यकता है। हृदय में उनको प्रतिष्ठित करना होगा, अन्यथा बड़े-बड़े मन्दिर, प्रतिष्ठान, आश्रम किसी काम नहीं आयेंगे। श्रीरामकृष्ण के उस (एक भक्त) पद्मलोचन की भाँति **"तेरे मन्दिर में नहीं हैं माधव गोपल। गोलमाल तूने किया फूँक शंख घड़ियाल"** हृदय-मन्दिर में माधव को प्रतिष्ठित कर लेने पर फिर शंख फूँकने की जरूरत नहीं होगी, स्वतः ही उनके निवास का अनुभव किया जा सकता है। रुपये होने पर हमलोग मन्दिर की स्थापना कर सकते हैं-- कर सकते हैं भगवान की संगमर्मर-मूर्ति की स्थापना। किन्तु उन्हें हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित करने के लिए हृदय की ऐकान्तिकता चाहिए, उन्हें कातरभाव से पुकारना होगा ताकि वे हमारे हृदय में अपना निवास करें। वे स्वप्रतिष्ठ हैं। उनकी प्रतिष्ठा करेगा कौन? हमलोग यदि अपने अहंकार का त्याग कर उनके चरणकमलों में अपने को उत्सर्ग कर सकें तो देखेंगे कि वे अपनी महिमा से सर्वत्र प्रतिष्ठित हैं। उनके उज्ज्वल आलोक से सभी दिशाएँ आलोकित हैं।

श्री श्रीरामकृष्ण भावमूर्ति हैं। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से कोई प्रतिष्ठा नहीं चाही। किसी के द्वारा उन्हें ऊँची मर्यादा दिए जाने पर वे संकोच का अनुभव करने लगते थे। कहा करते थे; "मैं कुछ नहीं हूँ। नाहँ, नाहँ तुहुँ तुहुँ।" उनके भीतर सदैव वही परमात्मा या परमेश्वरी विराजा करती थी, जिन्हें वे 'माँ' कहा करते थे। वही माँ उनके भीतर विराजित होकर चारों ओर अपने वरदहस्त फैला रही हैं, हम सब को वर और अभय प्रदान कर रही हैं। श्रीरामकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं, इस बात में यदि हमलोगों को विश्वास हो जाय तो साथ-साथ ही यह बोध भी हो जायगा कि उनकी असीम शक्ति हमलोगों की रक्षा कर रही है। उनका अनन्त ज्ञान हमारे भीतर विकास के लिए केवल एक सुअवसर की अपेक्षा कर रहा है। उनकी ओर दृष्टि डालने पर हमलोग समझ सकेंगे कि वे वराभय मूर्ति के रूप में सर्वत्र विराजमान हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं। 'न मे भक्त: प्रणश्यति"--मेरे भक्त का कभी भी नाश नहीं होता है। श्रीरामकृष्ण भी उसी प्रकार कहते हैं, यदि कभी लगे कि मन में कोई विकार उत्पन्न हो रहा है, साधन-पथ में कोई बाधा उत्पन्न हो रही है तो यह सोचना कि मैं ईश्वर की सन्तान हूँ। तब तुम्हारी दीनता की भावना और दुर्बलता समाप्त हो जायगी।

श्रीरामकृष्ण के प्रति थोड़ी-सी श्रद्धा का बीज वपन करने तथा भक्ति के जल से उसे सींचने पर धीरे-धीरे वह अंकुरित होकर पत्रपुष्प से शोभित एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो जायगा। दूसरों की ओर बिना देखे विचारना होगा कि मैं क्या कर सकता हूँ। कहीं-कहीं हम यह कहते सुनते हैं कि यहाँ श्रीरामकृष्ण के भाव के प्रति वैसा कुछ विशेष आग्रह लोगों में नहीं है, इसीलिए प्रयत्न करने पर भी लोग इकट्ठे नहीं हो पाते। प्रसंगवश यह स्मरण हो रहा है कि मद्रास स्थित रामकृष्ण मठ में स्वामी रामकृष्णानन्द (श्रीरामकृष्ण के एक साक्षात् शिष्य) नियमित रूप से श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में विवेचना किया करते, पाठ किया करते। एक दिन मठ में जाकर उन्होंने देखा कि एक भी व्यक्ति उपस्थित नहीं है। उन्होंने निर्धारित समय पर पाठ करना आरम्भ कर दिया। कुछ देर के बाद एक भक्त आये। देर से आने के कारण वे भीतर नहीं गये। बाहर ही खड़े रहे। तदुपरान्त पाठ समाप्त होने पर उन्होंने उन्हें प्रणाम कर पूछा, महाराज, यहाँ तो एक भी व्यक्ति उपस्थित नहीं था, तब फिर आप किसे सुना रहे थे? रामकृष्णानन्द जी ने कहा: "मैं क्या तुमलोगों को सुनाता हूँ? मैं श्रीरामकृष्ण को सुनाता हूँ। यह सही है कि तुमलोगों में से एक भी व्यक्ति नहीं था, किन्तु श्रीरामकृष्ण तो हैं! वे विश्व ब्रह्माण्ड से युक्त हैं।

उन्हें छोड़ देने पर सब शून्य है, और उन्हें यदि पकड़ा जाय तो सब पूर्ण है।" यह बात हमें सदैव याद रखनी होगी। भक्तों की संख्या देखकर विचार करने की जरूरत नहीं है। हमलोगों का कार्य है श्रद्धा-पूर्वक, विश्वास के साथ श्रीरामकृष्ण के भावों का अनुशीलन करना। भले ही वह अकेले हो या बहुत लोगों के साथ हो। इसके फलस्वरूप निश्चय ही कल्याण होगा। श्रीरामकृष्ण ने कहा है, फूल के खिलने पर भ्रमर अपने आप आ जाते हैं, उन्हें निमंत्रण देकर बुलाना नहीं पड़ता। उनका भाव लेकर यदि किसी व्यक्ति का जीवन कहीं विकसित हो तो उसके निकट चारों ओर से पिपासु भक्तगण आकर एकत्र हो जाते हैं। अखबार में विज्ञापन देकर उन्हें सूचित नहीं करना पड़ता। वे अपने प्राणों के आकर्षण से स्वयं ही चले आते हैं, वह आकर्षण यदि हमलोग अपने भीतर जगा सकें तो इसके बाद जो होना है स्वयं होगा। इसीलिए प्रतिकूलता की बात नहीं सोचेंगे, सोचेंगे कि हम में से हर कोई श्रीरामकृष्ण को कितना अपना समझ पाता है, हमलोगों के प्राण उनके भाव से कितना भावित हो पाते हैं। वे तो कृपा करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत हैं। उनका ही कथन है। "कृपा की वायु तो बह ही रही है, तू अपना पाल तान दे।" वायु बहती रहे किन्तु पाल नहीं तानने पर नौका आगे नहीं बढ़ती। हमलोग यदि पाल तान दें अर्थात उनकी कृपा का अनुभव करने के लिए अपने हृदय के द्वार को खोल दें तो हमलोगों का जीवन धन्य होगा तथा उनकी इच्छा होने पर उसी जीवन के द्वारा वे अपने भावों को चारों ओर फैला देंगे।

उनका (श्रीरामकृष्ण का) प्रचार कोई नहीं करता, वे स्वयं दूसरे को यंत्र बनाकर अपने भावों का प्रचार करते हैं—इस बात को ध्यान में रखना होगा। हमलोगों का हृदय श्रीरामकृष्ण के आलोक से आलोकित हो सके इसके लिए हमें अपने हृदय-द्वार को उन्मुक्त रखना होगा। उनके भावों को ग्रहण करने के लिए यदि मन में आग्रह और आकांक्षा रहे तो इतना ही पर्याप्त है, और किसी चीज की जरूरत नहीं है। इसके बाद जो आवश्यक होगा। उसकी व्यवस्था वे स्वयं कर देंगे।

हमलोगों ने उस पवित्र युग में जन्म ग्रहण किया है, जिसे स्वामीजी ने सत्ययुग कहा है, जिस युग में श्रीरामकृष्ण के भाव जगमगा रहे हैं, थोड़ा सचेतन होने पर ही हम समझ सकेंगे कि उनके भाव, सर्वत्र फैल रहे हैं, प्रवाहित हो रहे हैं, उन भावों को ग्रहण करने के लिए मात्र एक आग्रह की हमें आवश्यकता है। तब हम देखेंगे कि उस अनन्तधाम में हम अनायास ही पहुँच गये हैं।

श्रीरामकृष्ण आये थे हमलोगों को मार्ग दिखाने के लिए, हमलोगों के पथ को अपने जीवनालोक से आलोकित करने के लिए। वे हमलोगों के हृदय में प्रेरणा प्रदान करेंगे, बल प्रदान करेंगे और हमलोगों को दिव्य दृष्टि प्रदान करेंगे जिस दृष्टि से हमलोग स्पष्ट रूप से अपना पथ देख सकेंगे।

□

गुरु मानो मध्यस्थ हैं। जैसे मध्यस्थ प्रेमिक को प्रेमिका के साथ मिला देता है वैसे ही गुरु भी साधक को इष्ट के साथ मिला देते हैं। —श्रीरामकृष्ण

श्री रामकृष्ण का मानवी पक्ष

/—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

देश-काल-निमित्त से सीमित मानव का मन निर्गुण, निराकार, अनन्त, अनादि परमेश्वर की धारण करने में असमर्थ है। वह नाम, रूप तथा कार्य-कारण युक्त वस्तुओं की ही कल्पना कर सकता है। लेकिन उसकी ससीमता ही उसे असीम को स्वीकार करने को बाध्य करती है। मानव सदा अपनी सीमाओं के पार जाने का प्रयत्न करता है। और ऐसे में वह अपनी कल्पना के मानवी गुण, शक्ति, ज्ञान, आनन्द को बढ़ा कर एक ईश्वर की कल्पना करता है, जिनमें ये अनन्त गुण मात्रा में विद्यमान हों। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि मानव के माध्यम से ही ईश्वर की कल्पना संभव है। सौभाग्य से मानव के इतिहास में सदा ऐसे मानवों का आविर्भाव होता रहा है, जिनमें ज्ञान, शक्ति, आनन्द आदि का अधिक प्रकाश दिखाई देता है। इन्हें ही अवतार, ऋषि, देव-मानव, पैगम्बर, आदि कहा जाता है, और स्वामीजी के अनुसार ये ही वस्तुतः ईश्वर की तरह पूजित होने योग्य हैं। मानव की महत्तर कल्पनाएँ इन्हीं के माध्यमों से मूर्त रूप धारण करती हैं।

इन अवतारों और पैगम्बरों में मानवी और दैवी, दोनों ही पक्ष विद्यमान रहते हैं। एक ओर तो वे सामान्य मानव शरीरधारी, एवं मानव-सम चिन्तन, इच्छा आदि वाले मन से युक्त होते हैं, तो दूसरी ओर दैवी ज्ञान एवं सामार्थ्य युक्त भी होते हैं। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण को ही ले लीजिए। एक ओर तो वे सामान्य नटखट बालक की तरह खेल में माखन चोरी करते, हठ करते और अन्य बाल-सुलभ व्यवहार करते दिखाई देते हैं, तो दूसरी ओर वे अघासुर, बकासुर, धेनुकासुर पूतना आदि का अनायास बध करते दिखाई देते हैं। जो बालक के लिए तो क्या, सामान्य मानवों के लिए भी असंभव है। इस द्विविध व्यक्तित्व के कारण अवतारी महापुरुष मानव की देवत्व की ओर यात्रा में एक विशेष भूमिका निभाते हैं। दुर्बल मानव उनके मानवी रूप के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ होता है, और फिर उनके माध्यम से वह भगवान तक पहुँच पाता है। वे मानो, मनुष्य और ईश्वर, आत्मा और परमात्मा जीव और ब्रह्म के बीच एक सेतु हैं। उनका मानव-स्वभाव भक्तों के भय और संकोच को दूर कर अपनी ओर आकृष्ट करता है और फिर उनके भीतर के दैवी प्रकाश को देख भक्त परमात्मा को भी प्राप्त कर लेते हैं।

राम, कृष्ण, आदि पूर्व अवतारों की तरह श्रीरामकृष्ण में भी इन दो भक्तों का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। अधिकन्तु, श्रीरामकृष्ण में मानवी पक्ष, अन्य अवतारों की अपेक्षा अधिक विद्यमान है। यह भी संभव हो कि राम और कृष्ण आदि भी रामकृष्ण की तरह ही सामान्य-सहज मानव रहे हों, लेकिन उनके भक्तों ने उनके दैवी पक्ष को अधिक महत्व दे मानवत्व को मानो अप्रभावशाली रूप में चित्रित किया हो। ऐतिहासिक दृष्टि से श्री रामकृष्ण हमारे इतने निकट हैं, तथा उनकी जीवनी एवं घटनाचक्र इतने स्पष्ट रूप से लिपिबद्ध हैं कि उनके मानवी

पक्ष की स्पष्ट झलक पाना हमारे लिए कठिन नहीं है ।

श्री रामकृष्ण का परिवार एवं बाह्य रूप

एक महान आध्यात्मिक सन्त एवं संन्यासी होते हुए भी श्री रामकृष्ण का बाह्य वेश एक सामान्य गृहस्थ जैसा ही था । बुद्ध, चैतन्य और शंकराचार्य तीनों ही ने संन्यासी का काषाय वस्त्र धारण किया था, अतः सामान्य जनसमाज से उनका विशेषत्व स्पष्ट परिलक्षित होता था । लेकिन श्री रामकृष्ण धोती, कुर्त्ता, चप्पल, मच्छरदानी, आदि सामान्य गृहस्थ के द्वारा प्रयुक्त सभी वस्तुओं का उपयोग करते थे । वे थोड़ा तुतलाते थे, तथा ग्रामीण बंगाली में बात करते थे । रहते भी वे थे गृहस्थ की तरह —दो खाटों वाले एक कक्ष में तथा अपनी पत्नी के साथ किसी निर्जन प्रदेश में नहीं, वल्कि तत्कालीन भारत की राजधानी कलकत्ता ऐसे महा-नगर में रहते थे । भले ही उनकी पत्नी अलग कमरे में रहती हों पर पहले तो उनके साथ एक ही कमरे में रहती थीं । बाह्य परिवेश से श्री रामकृष्ण को सन्त या अन्य किसी भी सामान्य नागरिक से भिन्न समझना असंभव था । एक बार एक सज्जन उन्हें दक्षिणेश्वर मन्दिर के वगीचे का माली ही समझ बैठे और उनसे कुछ फूल तोड़ कर देने का आदेश देने में भी नहीं हिचकिचाये ।

श्रीरामकृष्ण के क्रिया-कलाप

श्रीरामकृष्ण के बाह्य क्रिया-कलाप भी सामान्य जन जैसे ही थे । वे भक्तों, शास्त्रज्ञ पण्डितों, साधकों एवं विशिष्ट जनों से मिलने में रुचि रखते थे । कहते थे, "जतो दिन बांची, ततो दिन सीखी," अर्थात् "जबतक जीवित हूँ, सीखता हूँ ।" वे भोज, भण्डार आदि में भी जाते थे, और अगर निमंत्रण-कर्ता ने आने-जाने के पैसे न दिये हों तो अपने साथियों के माध्यम से माँगने में भी हिचकिचाते नहीं थे । सहज सरल बालक की तरह पूर्णिमा-अमावस्या के दिन ज्वार भाटा के कारण गंगा में उठने वाली विशेष लहर, जिसे, "बांन" कहा जाता है, उसे देखने में उन्हें आनन्द का अनुभव होता था और उसके आते ही वे, अपने कमरे से दौड़ पड़ते थे । बालक की तरह ही वे बग्घी-तांगे में जाते हुए इधर-उधर झांक कर दोनों ओर के दृश्य देखते रहते थे- बालक की ही तरह भूख-प्यास लगने पर अधीर हो जाते थे । एक बार रेल गाड़ी से तीर्थ-यात्रा पर जाते समय वे स्टेशन पर घूम रहे थे कि अचानक रेलगाड़ी चल दी और वे पीछे रह गये ! कितनी मानव सुलभ घटना है यह ! उन्हें 'फागू' की कचौड़ियाँ विशेष प्रिय थीं; और एक बार गैस वाला सोडा पीने के बाद तो वे उसकी बार-बार माँग करने लगे थे । सर्कस, नाटक और चिड़ियाघर और अजायब घर देखने भी वे गये थे । बालक की तरह उनके जो मन में आता था अचानक बोल पड़ते थे, और समझाये जाने पर झट मान भी जाते थे । अगर वे बालक की तरह अधीर हो उठते थे, तो कुछ लोगों की बातों में उनका बालकों सा सरल विश्वास भी था ।

व्यावहारिक बोध

उपर्युक्त सरलताओं के अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण में एक प्रबल व्यावहारिक बोध था । मां काली के प्रसाद का एक थाल उनके कमरे में भेजा जाना था । अगर किसी दिन वह न पहुँचे तो वे उसके बारे में खोज-खबर लेते थे, जिससे कि वह नियम बना रहे तथा उस प्रसाद का उपयुक्त सच्चरित्र लोगों में वितरण हो तथा इस तरह रानी रासमणि द्वारा किया गया प्रयास सफल हो । अगर किसी कारण पूर्वोक्त मन्दिर में मनाये जाने वाले धार्मिक त्योहार-उत्सवों आदि की प्रारंभिक परंपराओं में कोई फेर-बदल होता तो वे उस पर आक्षेप करते तथा उन्हें पूर्ववत बना रहने देने का अनुरोध

करते । वे चाहते थे कि प्रत्यक साधक तथा उनके अनुगत भक्त का जीवन सुश्रृंखलाबद्ध, सुनियोजित हो। पहनने वाला वस्त्र फटा न हो, स्नान करने का जल गन्दे स्थान पर न रखा हो, लालटेन या दीपक जलाने में एक से अधिक माचिस की तीली का उपयोग न हो, जिस वस्तु को जिस स्थान पर रखना चाहिए, वह वहीं रखी हो, आदि अनेक बातों पर वे ध्यान रखते थे। वे कहा करते थे कि साधु होने का अर्थ सांसारिक अथवा व्यावहारिक दृष्टि से मूर्ख होना नहीं है। न ही वे अपने शिष्यों का एकांगी होना पसंद करते थे। उनकी निरीक्षण-क्षमता भी तीक्ष्ण थी। किसी भी नये व्यक्ति के चाल-चलन, हाव-भाव आदि से ही वे उसके चरित्र, मनोभाव तथा आगमन के उद्देश्य को भाँप जाया करते थे।

श्रीरामकृष्ण के मानवी सद्गुण

श्रीरामकृष्ण का मन हम लोगों के मन की तरह का होते हुए भी अनेक सद्गुणों का भंडार था। स्वामी सारदानन्दजी अपने विख्यात ग्रन्थ "श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग" में श्रीरामकृष्ण के इन मानवी सद्गुणों का विस्तार से वर्णन एवं विश्लेषण करते हैं। धर्म, शास्त्र, एवं सन्तों में प्रगाढ़ विश्वास, सत्यानुराग एवं सत्यानुसन्धान की प्रबल इच्छा, असीम धैर्य, निष्ठा एवं अद्भुत एकाग्रता श्रीरामकृष्ण में पर्याप्त मात्रा में थी। श्रीरामकृष्ण को यदि अवतार या विशेष ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न देवमानव न भी मानें तो भी उनके ये सद्गुण हमें उन्हें एक मानव-विशेष, अथवा महापुरुष के रूप में स्वीकार करने को बाध्य करते हैं। और सर्वोपरि थी उनकी दुखियों के प्रति असीम सहानुभूति और प्रेम।

श्रीरामकृष्ण का सौन्दर्य बोध

यह तो विदित ही है कि श्रीरामकृष्ण सौन्दर्य-प्रिय थे। बाल्यकाल में उड़ रहे मेघाच्छन्न काले आकाश की पृष्ठभूमि में उड़ रहे सफेद बगुलों की कतार को देखकर वे समाधिस्थ हो गये थे। यह सौन्दर्य बोध उनका सारे जीवन बना रहा था। दक्षिणेश्वर की भवतारिनी माँ काली की मूर्ति को वे अत्यन्त सुन्दर ढंग से पुष्पों, अलंकारों एवं वस्त्रों से सजाते थे। एक बार माँ सारदा ने जवा पुष्पों की एक सुन्दर माला बनायी। उसे पहनाये जाने पर माँ जगदम्बा का रूप अद्भुत रूप से निखर आया। यह देख कर श्रीरामकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और माँ सारदा को इसके लिए साधुवाद दिया।

श्रीरामकृष्ण स्वयं एक कुशल मूर्तिकार थे एवं अपने हाथों से ही देवी-देवताओं की ऐसी मूर्तियों का निर्माण कर सकते थे जिनके चेहरे पर दिव्य-भावों का सुन्दर स्फुरण हो। दक्षिणेश्वर के विष्णु-मन्दिर की श्रीकृष्ण की मूर्ति के खंडित हो जाने पर स्वयं श्री श्रीरामकृष्ण ने उसे इस निपुणता के साथ पुनः जोड़ दिया था कि कोई पहचान ही नहीं सकता था कि वह कभी टूटी भी थी।

श्रीरामकृष्ण को संगीत तो प्रिय था ही, वे स्वयं एक अच्छे गायक थे और संगीत के मर्मज्ञ भी थे। उनके कमरे में सदा ही भजन-कीर्तन हुआ करते थे। वे गायन में भाव की उदात्तता को सबसे अधिक महत्त्व देते थे, किन्तु वे यह भी चाहते थे कि गीत का ताल, लय, राग आदि भी ठीक हो।

श्रीरामकृष्ण की रसिकता, रंग-रसप्रियता और हास्य तो प्रसिद्ध ही है। वे एक सदानन्दमय महापुरुष थे, जिनकी अवस्थिति मात्र से विषाद मिट जाता था तथा आनन्द का सचार होता था। हंसी-मजाक के द्वारा वे अपने युवक शिष्यों को हंसा-हंसा कर लोट-पोट कर दिया करते थे। इसके विपरीत उनका संवेदनशील हृदय सामान्य मानवों की तरह ही शोक और विषादग्रस्त भी हो जाता था। भानजे अक्षय की मृत्यु पर उन्हें गहरी वेदना हुई

थी। यही नहीं, जिस कमरे में अक्षय की मृत्यु हुई, श्रीरामकृष्ण ने उसमें जाना ही छोड़ दिया था।

उपसंहार—

उपर्युक्त कतिपय तथ्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीरामकृष्ण एक अद्वितीय महापुरुष, सन्त एवं ईश्वरावतार होते हुए भी हमारी ही तरह एक मानव भी थे। उनकी देह और बनावट हमारी देह और मन की बनावट से अनेक बातों में भिन्न होते हुए भी कई प्रकार से हमारे समान भी थी। यह सत्य हमें उनकी ओर जाने के लिए मानो प्रोत्साहित करता है। उनके निकट जाने में किसी भी सामान्य-से-सामान्य नागरिक को संकोच नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करने का कोई न-कोई आधार खोज सकता है। श्रीरामकृष्ण के इस सहज-सरल मानवी पक्ष का यह सबसे बड़ा लाभ है कि वह उन्हें हम सभी के इतने निकट ला खड़ा करता है। यदि एक बार उनसे मानव के रूप में भी अनुराग हो जाय, तो भी हमारा कल्याण होगा। यही अनुराग हमें उनमें अधिकाधिक देवत्व देखने को बाध्य ही नहीं करेगा, बल्कि हमारे भीतर की दिव्यता को भी स्वाभाविक रूप से प्रकट कर देगा। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण ने हम जैसे सामान्य जनों के लिए परमात्म-पथ को कितना सरल बना दिया है!

जन्म तिथि : २८ जनवरी

रसिकराज राखालराज

—स्वामी लोकेश्वरानन्द

[स्वामी लोकेश्वरानन्द रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के सचिव हैं। उनके प्रस्तुत लेख का उद्बोधन से अनुवाद किया गया है। अनुवादक हैं—डॉ० केदार नाथ लाभ]

'रसो वै सः'—तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म को समस्त वस्तुओं का रस कहा गया है। रस अर्थात् सार। फिर सार का अर्थ आनन्द भी है। तैत्तिरीय उपनिषद् में ही फिर कहा गया है—'आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्' अर्थात् ऋषियों ने आनन्द को ब्रह्मस्वरूप माना। वस्तुतः हमलोग देखते हैं कि जो ब्रह्मज्ञ हैं—वे सदैव आनन्दमय रहते हैं। श्रीरामकृष्ण इसके एक उज्ज्वल उदाहरण हैं। उनकी धर्मचर्चा ज्ञान-गंभीर होने पर भी सर्वदा रससिक्त रहती थी। कौतुकमय। प्रत्येक तत्व के साथ उदाहरण, और छोटी-छोटी कहानियाँ। गीत भी। और सब से बढ़कर दिव्य हँसी। सब मिलाकर वे जहाँ जाते वहाँ आनन्द की हाट लग जाती। वे सब को इस तरह हँसाते कि बीच-बीच में जो कम उम्र के शिष्य-गण उनके समीप आते, वे हँसते-हँसते धरती पर लोट पोट हो जाते। कहते—'अब और नहीं हँस पाते हैं, अब रुकिए।'

'बाप का बेटा, सिपाही का घोड़ा, कुछ नहीं तो थोड़ा थोड़ा।' श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र ब्रह्मानन्द। संन्यास के पूर्व का नाम राखाल रसिकराज। देखने

में गम्भीर, ध्यान गम्भीर। जैसे हिमालय। आध्यात्मिकता के घनीभूत रूप। किन्तु अन्तर रस से लबालब। पिता की धारा।

स्वभाव बालकवत्। शिशु की भाँति कौतुक प्रिय। कितनी तरह की दुष्ट बुद्धि माथे में घूमती रहती। किन्तु अकेले अकेले तो खेला नहीं जा सकता। संगी साथी चाहिए। कलकत्ता आकर स्वामी ब्रह्मानन्द बलराम मन्दिर में पहुँचते। बलराम बाबू के पुत्र उनके मंत्र-शिष्य थे। चाहते थे कि उनके गुरु उनके साथ ही रहें, उनकी सेवा ग्रहण करें। किन्तु स्वामी ब्रह्मानन्द के आकर्षण का केन्द्र कहाँ था? श्रीरामकृष्ण की स्मृति से धन्य बलराम मन्दिर। यह भी एक आकर्षण का कारण था। मंत्र-शिष्य की अभिलाषा—यह भी एक कारण था। किन्तु शिशु सुलभ स्वामी ब्रह्मानन्द का बलराम-मन्दिर के प्रति एक बड़ा आकर्षण था मनोनुकूल खिलाड़ियों का सान्निध्य। उन दिनों इस घर में अनेक शिशु थे। माँ मौसियों के अत्याचार से वे जर्जर थे। उनके लिए एक मात्र शान्ति-स्थल थे—स्वामी ब्रह्मानन्द। वे उनलोगों के मित्र, अत्यन्त अपने व्यक्ति, समव्यथी थे। उनके समीप सान्त्वना पायी जाती, फिर नयी शरारत क्या की जाय इसकी राय भी मिलती, संसारका कोई उन्हें समझता नहीं, समझते एक व्यक्ति—महाराज अर्थात् स्वामी ब्रह्मानन्द। वे महाराज के कंधों पर, पीठ पर चढ़ जाते। जानते नहीं, समझते नहीं कि वे साधु हैं, गुरुजन हैं। लोगों के रोकने पर भी मानते नहीं।

महाराज ने एक दिन सभी लड़के-लड़िकियों को खड़ाकर नाचना सिखाना शुरू किया। ताल देकर नाच सिखाते हैं। साथ ही गीत का एक पद। 'अब कमर पर पर हाथ दो, गोल-गोल घूम जाओ, एक हाथ उठाओ, ऐसे देखो, ऐसे हँसो, ऐसे कमर हिलाओ' इत्यादि। महाराज लेकिन आरामकुर्सी पर बैठे हैं। वे बैठे ही नाच की भंगिमा सिखाते हैं। बच्चों को अशेष आनन्द मिल रहा है नाच सीख रहे हैं। और शिक्षक स्वयं महाराज। वे जैसे बड़ों के गुरु महाराज हैं, वैसे ही उनके भी गुरु महाराज हैं।

नाच के गुरु, और जितनी शरारतें हैं उनके भी गुरु। कुछ दिन सर्वत्र नाच सीखने का फल यह हुआ कि शिशुगण घर-बाहर सर्वत्र नाच का अभ्यास करने लगे। एक लड़का एक प्रकार की भंगिमा करे तो दूसरा बोले 'वह नहीं हुआ, ऐसे।' वह दिखा देता। इसके बाद तर्क, झगड़े। अंत में महाराज मीमांसा कर देते। धीरे धीरे गृहणियों की नजर पड़ी इस नाच-क्रीड़ा पर। क्या सर्वनाश। धिंगी लड़कियों ने भी नाचना शुरू कर दिया है। धिंगी का अर्थ हुआ जिनकी उम्र आठ-दस बरस की होगी। किन्तु उनको कौन रोकेगा? महाराज उनके आश्रय दाता हैं। उनलोगों के द्वारा महाराज को यह बात कहने पर महाराज ने कहा 'ठहरो, तुमलोगों को और एक नाच सिखाता हूँ।'

एक बार महाराज बलराम मन्दिर में हैं, गंगाधर महाराज अर्थात् स्वामी अखण्डानन्द भी हैं। वे श्रीरामकृष्ण के एक अन्य शिष्य हैं। स्वामी अखण्डानन्द भी एक शिशु के समान ही हैं। उनकी धारणा थी कि प्रातः काल उठते ही यदि एक आँख का काना, या एक आँख बन्द किये हुए कोई आदमी आँखों के सामने आ जाय तो अमंगल होगा। एक दिन स्वामी अखण्डानन्द सोकर उठेंगे, तब भी आँखें उन्होंने नहीं खोली, किन्तु जगे हुए हैं, उसी समय एक शिशु उनके घर में आकर कहता है—'यही तो, महाराज, सुप्रभात।' गंगाधर महाराज आँखें खोलते ही देखते हैं कि उसकी एक आँख बन्द थी। वे चीत्कार कर उठे, बोले—'सर्वनाश हो गया, मेरा दिन मिट्टी में मिल गया।' किन्तु वह शिशु अकेला नहीं था, उसके पीछे एक बैटेलियन लड़के लड़कियाँ थे। सब की एक आँख

बन्द था। सब के मुँह से एक ही बात महाराज सुप्रभात।' स्वामी अखण्डानन्द ने कहा—'समझ रहा हूँ, यह सब महाराज का काम है।'

बलराम मन्दिर में हैं महाराज। वहाँ उस समय काफी बच्चे लड़के-लड़कियाँ भी—हैं। महाराज ने कहला दिया है सभी बच्चों को अपने घर भेज देने के लिए। तब शाम हो गयी है। महाराज अँधेरे में एक भालू की खाल शरीर पर लपेटकर खड़े हैं। बच्चे उनके घर में आकर उन्हें देखते ही डर से दौड़कर भाग गये है। किन्तु एक लड़का नहीं भागा। महाराज उसे खूब प्यार करते। भय से उसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं—फिर भी वह दो हाथ बढ़कर महाराज की ओर जा रहा है और कह रहा है—'मैं जानता हूँ, तुम महाराज हो।' तब महाराज ने भालू का भेष हटाकर लड़के को बाँहों में जकड़ लिया। रस रंग के कार्य में उनके माथेसे विलक्षण बुद्धि प्रकट होती थी।

एक बार महाराज के साथ स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी शिवानन्द भी बलराम मन्दिर में हैं। नित्य तीनों गुरुभाई एक साथ गंगा स्नान करने जाते और लौटकर जलपान करते। उन तीनों की जलपान सामग्री अलग थाल में ढँकी रहती। एक दिन सवेरे महाराज ने अपने गुरुभाइयों से कहा—'आज मैं स्नान करने नहीं जाऊँगा, शरीर ठीक नहीं है। आप लोग जायँ।'' वे दोनों स्नानकर लौट आये। देखा, रोज की तरह तीन व्यक्तियों का जलपान टेबुल पर सजाया हुआ है। किन्तु ढक्कन हटाने पर वे अवाक् हो गये। थाले खाली पड़े हैं। किसने तीनों व्यक्तियों का जलपान खाकर समाप्त कर दिया है? उन लोगों ने महाराज के घर में उझक कर देखा, महाराज चादर से सिर ढक कर सोये हैं। अस्वस्थ हैं न! चादर के नीचे शरारती बालक तब मुँह दबा-दबाकर हँस रहे हैं।

एक बार महाराज उड़ीसा के कोठार में हैं। कोठार में बलराम बाबू की जमींदारी थी। महाराज बीच-बीच में आकर यहाँ ठहरते हैं; स्वामी अखंडानन्द को लिखा 'भाई, तुम्हें बहुत दिनों से नहीं देखा है। एक बार तुम यहाँ आ जाओ।'' स्वामी अखण्डानन्द सारगाछी में अनाथ बच्चों को लेकर रहते हैं, उनसब को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते। उनके लिए सभी गुरुभाई जितनी चिन्ता करते उतना ही उनके प्रति गर्वबोध भी करते। कई बार लिखने के बाद स्वामी अखण्डानन्द कोठार आये। महाराज की बात टालना बड़ा मुश्किल था। गुरुपुत्र को वे सब गुरु की भाँति ही देखते। बहुत दिनों तक कोठार में रहने के बाद स्वामी अखण्डानन्द सारगाछी लौटने के लिए विकल हो उठे। किन्तु महाराज किसी भी प्रकार छोड़ते नहीं। अनेक कारण बताकर रोके हुए हैं। स्वामी अखण्डानन्द पंजी मानते थे। पंजी में अच्छा दिन किसी तरह मिल नहीं पाता था। अंत में एक अच्छा दिन पाया गया। उसी दिन की रात की ट्रेन से स्वामी अखण्डानन्द कलकत्ते की ओर रवाना हुए। पालकी ठीक कर स्टेशन जाना होगा। रात का भोजन कर महाराज से विदा ले स्वामी अखण्डानन्द निश्चिन्त मन से पालकी पर जा बैठे। अंधकार से भरा रास्ता। तब कठोर शहर नहीं बना था। लगता है स्वामी अखण्डानन्द भी तन्द्रा में पड़गये थे। फिर भी कहारों से दो-एक बार जिज्ञासा करते हैं—''और कितनी दूर?'' वे कहते हैं थोड़ी दूर और।'स्वामी अखण्डान्द देखते हैं, दूर पर एक घर है, काफी रोशनी जल रही है सोचते हैं, स्टेशन पर आ गये हैं, पालकी रुकी, अखण्डानन्द महाराज पालकी से उतरे। देखा—सामने स्वयं महाराज खड़े हैं। उन्होंने अखण्डनन्द महाराज को सहास्य सादर अभ्यर्थना करते हुए कहा; 'क्या भाई, लौट क्यों आये?' अखंडानन्द जी ने समझ लिया कि महाराज के गुप्त निर्देश से कहारों ने इधर-उधर घुमाकर उन्हें कोठार के घर में पुनः वापस ला दिया है। महाराज, महाराज। अनन्त भाव, अनन्त रस। *

स्वामी सदानन्द की सेवा साधना

स्वामी विमलात्मानन्द

अनुवादक—ब्र. विवेक

उत्तर प्रदेश का हाथरस रेलवे स्टेशन ! स्टेशन मास्टर हैं—बलिष्ठ शरीर, दृढ़ चरित्र, तेजोदीप्त मुखमंडल, सदा कर्त्तव्यपरायण, असीम साहसी एवं सूफी धर्मानुरागी एक बंगाली नवयुवक जिनका बंगला भाषा ज्ञान प्रायः नगण्य है। एक दिन वैराग्य मण्डित निरभिमानी, उज्ज्वल देहकान्ति युक्त, उन्नत ललाट समन्वित, प्रशान्त चित्त एवं सदानन्दमय एक अद्भुत परिव्राजक युवा संन्यासी के असाधारण रूप से चमकीले 'मारात्मक युगल नेत्र' की मनोहारिता ने इस प्रवासी यवा स्टेशन मास्टर को मंत्रमुग्ध कर डाला। उन युगल नेत्र की अप्रतिरोध्य सम्मोहकता ने घर बार तक छोड़ने के लिए उन्हें विवश कर दिया तथा बाध्य कर दिया संन्यासी जीवन ग्रहण करने को। परवर्ती काल में यही स्टेशन मास्टर हुए—स्वामी सदानन्द (रामकृष्ण संघ में गुप्त महाराज के नाम से परिचित) तथा वह परिव्राजक संन्यासी थे उनके गुरु स्वामी विवेकानन्द। योग्य गुरु के योग्य शिष्य।

स्वामी सदानन्द स्वामी विवेकानन्द के प्रथम संन्यासी शिष्य थे। उनके ही समक्ष स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण प्रदत्त आदेश-निर्देश, प्रचार-प्रसार एवं धर्मसंस्थापन की बातें सर्व प्रथम व्यक्त की थी। इसी लिए श्रीरामकृष्ण रूपी यज्ञाग्नि में स्वामी सदानन्द हुए आहुतिस्वरूप प्रथम घृतयुक्त बिल्वपत्र। गर्व के साथ वे बोलते थे, "स्वामीजी के जगत् हिताय कार्य का श्री गणेश तो मुझको ही लेकर हुआ। अरे, स्वामीजी के सेवा-कार्यों को करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है।"

स्वयं स्वामीजी ने सदानन्द के हृदय में सेवाभाव का बीजारोपण किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक, अपना अन्तिम रक्त-विन्दु दान कर स्वामी सदानन्द ने सेवा की धारा को अविच्छिन्न बनाये रखा था। यहाँ हम उनके द्वारा किये गये केवल प्लेग सेवा कार्यों का ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे।

स्वामी सदानन्द अपने संबंध में बोलते हैं, "अरे, हमलोग क्या साधारण साधु हैं? हमलोग ऋषियों के दल के हैं।" अगर ऐसी बात नहीं होती तो ऐसे सदानन्द के जूतों को स्वामीजी ऋषिकेश की राह में अपने सिर पर ढोकर नहीं ले जाते। सदानन्द स्वामीजी के असली 'मर्द चेला' थे। उनके भीतर स्वामीजी ने एक महाशक्ति को देखा था। उत्तर-पश्चिम भारत भ्रमण के समय सदानन्द को स्वामीजी के दुर्लभ संगलाभ का अवसर प्राप्त हुआ था। भगिनी निवेदिता की नजरों में सदानन्द थे—'अत्यधिक कार्यभार एवं व्यस्तताओं से घिरे एक कर्मयोगी, 'सहानुभूति से परिपूर्ण' 'वास्तविक देवदूत' तथा 'अनन्त माधुर्यपूर्ण, मर्यादा सम्पन्न एवं धैर्यमण्डित संन्यासी'। निवेदिता के साथ उनकी प्रगाढ़ मैत्री थी। स्वामीजी द्वारा नियुक्त निवेदिता के वे एक ओर अभिभावक थे तो दूसरी ओर थे उनके मित्र, दार्शनिक एवं पथ-प्रदर्शक।

स्वामी सदानन्द ने जिस तरह श्री रामकृष्ण के लीला-पार्षदों के साथ विभिन्न स्थानों पर तपस्याएँ की थीं, उसी तरह उन्होंने स्वामी

अभेदानन्द जैसे विद्वान संन्यासी के पास रहकर शास्त्राध्ययन भी किया था। मठ में सभी लोगों को अपने प्रेम-प्रवाह से वे आप्लावित किये रहते थे, इसीलिए उनका नाम ही पड़ गया था—'प्रेम-पागल। यह 'प्रेम-पागल' सदैव सेवा कार्य के लिए भी तत्पर रहते थे। गोपाल की माँ की बीमारी के समय हम उन्हें देखते हैं। बलराम बाबू एवं अभेदानन्द स्वामी की रोग शय्या के पार्श्व में उन्हें देखते हैं तथा उन्हें देखते हैं मूर्तिमान सेवक के रूप में कुष्ट रोगी के पास में। कलकत्ता प्लेग रोग सेवाकार्य का भार स्वामीजी ऐसे कर्मकुशल एवं सेवानिष्ठ सदानन्द के ऊपर न देकर और किसके ऊपर देते ?

१८९८ ई० में कलकत्ते में प्लेग का प्रकोप हुआ था। प्लेग के आतंक से लोग पूरी तरह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। जितना रोग नहीं उससे अधिक मनगढंत आशंकाएँ। इसी कारण लोग भय से घबड़ाये हुए थे। घर द्वार छोड़कर किसी सुरक्षित स्थान को सभी भाग रहे थे। स्वामीजी उस समय दार्जिलिंग में थे। स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से वहाँ रह रहे थे। २९ अप्रैल १८९८ को स्वामी ब्रह्मानन्द ने स्वामीजी को एक पत्र लिखा "कलकत्ता से काफी संख्या में लोग भाग रहे हैं। एक तरह से खूब आतंक फैल गया है। ऐसा लग रहा है कि, दो चार दिनों में काफी लोग चले जाएँगे।" प्लेग के दुःखद समाचार से विचलित हो उठे दीनबन्धु विवेकानन्द। उस समय की उनकी मानसिक अवस्था: "स्वामीजी ऐसे आनन्द-मय पुरुष थे। देखा, अचानक एक दिन बिल्कुल गम्भीर हो गये। दिनभर कुछ खाये नहीं। चुप-चाप ... सारा दिन एक तकिए के ऊपर सिर टिकाकर बैठे रहे।"

स्वामीजी ने मठ का सबकुछ बेचकर भी प्लेग सेवा कार्य चलाने का निर्णय लिया। संगी गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द उस घटना के साक्षी थे। स्वामीजी दार्जिलिंग से मठ लौट आये। मठ उस समय नीलाम्बर मुखर्जी उद्यानगृह में अवस्थित था। उन्होंने सभी साधु-ब्रह्मचारियों एवं भक्तों को बुलाया। ओजस्वी भाषा में प्लेग सेवाकार्य में कूद पड़ने के लिए उन्होंने सभी का उदात्त अह्वान किया।

उन्होंने प्लेग रोगियों की सेवाशुश्रूषा कार्य का नेतृत्व भगिनी निवेदिता को दिया। इस कार्य के लिए भगिनी निवेदिता के सहयोगी हुए स्वामी सदानन्द। 'अपील पत्र' के प्रचार कार्य में स्वामी अखण्डानन्द की भूमिका प्रशंसनीय थी। प्लेग रोग विशेषज्ञ डा० हॉफकिन की रिपोर्ट अनुसार प्लेग रोगियों के पृथक आवास स्थान की व्यवस्था की गयी। सरकार द्वारा आरोपित विधि-निषेध समाप्त हो गया। प्लेग के प्रकोप को कम हुआ देखकर स्वामीजी उत्तर भारत-भ्रमण के लिए निकल पड़े। उस समय भी वे प्लेग सेवाकार्य में स्वामी ब्रह्मानन्द को पत्र द्वारा यथोचित निर्देश देते रहे। उस वर्ष के अपने तीन पत्रों में (२० मई, १७ जुलाई एवं १ अगस्त) स्वामीजी ने उस संबन्ध में निर्देश दिये थे।

घात में बैठा प्लेग दूसरे वर्ष पुनः कलकत्ते की छाती पर कूद पड़ा। निवेदिता लिखती हैं—"कितना भयंकर ! चारों ओर लोग मर रहे हैं। फिर भी कुछ नहीं किया जा सकता।" स्वामीजी के निर्देशानुसार ३१ मार्च, १८९९ ई० को गुड फ्राईडे के दिन सेवा कार्य आरम्भ हो गया। सेवा कार्य सुन्दर ढंग से परिचालित हो, उसके लिए एक समिति गठित हुई। निवेदिता इसकी अध्यक्षा हुई तथा प्रधान कार्यपरिचालक हुए 'स्वामी सदानन्द। अन्य सहयोगी हुए —स्वामी शिवानन्द (स्वामीजी के गुरुभाई), स्वामी नित्यानन्द एवं स्वामी आत्मानन्द (दोनों ही स्वामी जी के शिष्य)।

जन साधारण का मनोबल बढ़ाने के लिए एवं कार्यकर्त्ताओं को उत्साहित करने के लिए स्वामीजी ने स्वयं दरिद्र मुहल्लों में निवास किया था। संवाद पत्र में निवेदिता के लेख एवं सेवाकार्य सम्बन्धी विवरण प्रकाशित होने के बाद भारतीय एवं यूरोपीय लोगों के पास से आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगी। हेल्थ ऑफिसर डा० नील्ड कुक ने मिशन के सेवा केन्द्र का निरीक्षण किया। प्लेग कमिटी के चेयरमैन मि० राईट ने सेवाकार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस प्रसंग में निवेदिता, एक पत्र (८ अप्रैल १८९९) में लिखती है "हमलोगों ने जो कुछ किया था, उसे वे (मि० राईट) पहले नहीं देख सके। इसके लिए उन्होंने अफसोस प्रकट किया। मैंने उनसे कहा कि हमलोग यह नहीं जानते थे कि आप हमारे यहाँ आयेंगे और वह हमलोगों के देखने का विषय भी नहीं था। हमलोग आम जनता की भलाई करना चाहते हैं, यूँही हो-हंगामा करना हमारा उद्देश्य नहीं था। अन्त में सदानन्द वर्ग प्रोत्साहित करते हुए कहा कि हमलोगों ने जिन गंदी वस्तियों में कार्य किया, वे आदर्श वस्तियाँ थीं और उन्होंने मुझसे कहा कि हमलोग चाहते अथवा उन्हें आर्थिक सहायता देने को कहते तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी।

प्लेग निवारण का प्रथम एवं प्रधान उपाय है घर-आंगन की सफाई करना। स्वामी सदानन्द ने सात मेहतरो की सहायता से सर्व प्रथम बाग-बाजार के बोस पाड़ा मुहल्ले की सफाई की। निवेदिता उनके कार्य का परिचय देते हुए कहती हैं—"साहसी संचालक की तरह सदानन्द एवं उनके मेहतरों का दल काफी सबेरे ही निकल पड़ते हैं। सफाई के बाद सड़कों का चेहरा बदल गया है। उन्हें धन्यवाद! गत रात्रि प्लेग सम्बन्धी बंगला 'अपील पत्र' आया। आज हमलोग उसे बाँट रहे रहे हैं और उसके साथ-साथ प्लेग जीवाणु नाशक द्रव्यादि भी। कल रात एक मकान के दरवाजे के पास कई घंटे बैठकर सभी राहगीरों के बीच उन्होंने अपील-पत्र वितरित किया।

श्याम बाजार के निकिड़ी पाड़ा मुहल्ले का अस्वास्थ्यकर परिवेश परिष्कृत हुआ। स्थानीय मेडिकल ऑफिसर डा० मेदिनी साहब यहाँ निरीक्षण करने के लिए आये। सियालदह के पास की गन्दी नाली की भी सफाई की गयी। मेहतर के अतिरिक्त अन्य कुलियों को भी कार्य में लगाया गया था। यहाँ १९ अप्रैल से ३० अप्रैल तक कार्य चला था।

५ अप्रैल, १८९९ को अपने पत्र में निवेदिता स्वामीजी की शिष्या मेकलाउड को लिखती है—'सदानन्द नौकर की तरह सफाई का कार्य कर रहे हैं।" निवेदिता स्वामी सदानन्द के कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं। वे निवेदिता के योग्य सहकर्मी थे। सदानन्द के बिना निवेदिता के लिए इस विराट सेवा कार्य को अच्छी तरह से सम्पन्न करना संभव नहीं था। निवेदिता निर्द्वन्द्व भाव से कृतज्ञता स्वीकार करते हुए लिखती हैं—'हमलोगों के साथ सदानन्द के समान और दूसरा कौन है? इसीलिए इतने समय तक उत्साह बना हुआ है। वह वास्तव में 'जीनियस' है। मेहतरों का दल उससे प्रेम रखता है, महिलाएँ उनका स्वागत करती हैं, लड़के-लड़कियाँ उनके विचार के अनुसार चलते हैं और लोग उनपर विश्वास रखते हैं। जब वे क्लान्त हो जाते हैं तो मुझे डर लगता है। परन्तु यदि वे क्लान्त भी हो जायें तो भी मेरा विश्वास है कि वे पुनः कार्य करना आरम्भ कर देंगे।' सदानन्द का नाम ही पड़ गया था—स्कैवेन्जर (झाड़ूदार)।

१९०० ई० में पुनः कलकत्ता में प्लेग का आगमन हुआ। स्वामीजी यूरोप एवं अमेरिका गये हुए हैं। निवेदिता भी अपने बागबाजार स्थित विद्यालय के लिए अर्थ संग्रह के उद्देश्य से इंगलैंड

एवं अमेरिका में है। किन्तु उपस्थित हैं, हमारे झाड़ूदार मेहतर स्वामी सदानन्द। कोई परवाह नहीं। अत्यन्त दक्षतापूर्वक इस प्लेग सेवाकार्य की समस्त जिम्मेदारियाँ उन्होंने अपने कंधों पर लीं।

मेहतरों के साथ सदानन्द स्वयं गन्दे मुहल्लों की सफाई कर रहे हैं। जहाँ मेहतर भी जाने से डरते हैं, वहाँ वे बिल्कुल निर्भय होकर अम्लान-बदन कूड़ों के ढेर की सफाई कर रहे हैं। अपनी गलती महसूस कर मेहतर पुनः उनके साथ ताल से ताल मिलाकर कार्य कर रहे हैं। पाँच सप्ताह से छः मेहतरों एवं तीन झाड़ूदारों को साथ लेकर वे नाले वगैरह की सफाई कर रहे हैं। कीटाणु नाशक औषधि वितरण कर रहे हैं। अपने दल-बल के साथ गन्दी बस्तियों की तेरह सौ झोपड़ियों एवं चालीस पक्के मकानों की सफाई उन्होंने की। सफाई कार्य के दौरान जो कूड़ा-करकट स्थानान्तरित हुआ था, वह एक सौ साठ गाड़ी हुआ था। शहर के अत्यन्त गन्दे इलाकों में सदानन्द ने कार्य किया था।

गवेषक अध्यापक डा० शंकरी प्रसाद वसु के अनुसार १९०० ई० के प्लेग महामारी सेवाकार्य में सदानन्द ने अतुलनीय वीरत्व का प्रदर्शन किया था। हरेक की जबान पर उनका नाम था। उस समय रामकृष्ण मिशन कोई बहुत बड़ा प्रतिष्ठान नहीं था। पूँजी भी अधिक नहीं थी। तब भी उसके द्वारा असाधारण कार्य हुआ था और विवेकानन्द की इस उक्ति की सत्यता प्रमाणित हुई थी कि 'मनुष्य ही कार्य करता है, रुपया नहीं।'

सदानन्द के इस प्लेग सेवा कार्य का अत्यन्त मर्मस्पर्शी संस्मरण एक स्वयं सेवक कुमुद बन्धुसेन ने उपहार स्वरूप दिया है। कुमुद बन्धु सेन श्री श्रीमाँ सारदा देवी के मंत्र शिष्य थे तथा उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव के प्रायः सभी लीला-पार्षदों के दर्शन किये थे। बाद में चलकर उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'गिरीश अध्यापक' पद को अलंकृत किया था। कुमुद बन्धु सेन लिखते हैं—"मुझे स्वामी सदानन्द महाराज के साथ घनिष्ठ रूप से परिचित होने का सुयोग प्राप्त हुआ था कलकत्ते में प्लेग सेवाकार्य के दौरान। रामकृष्ण मिशन के प्लेग सेवाकार्य के इतिहास में स्वामी सदानन्द का नाम चिरस्मरणीय है। वस्तुतः इस सेवाकार्य के वे प्राणस्वरूप थे। मैं प्रतिदिन बाड़ाबाजार स्थित बलराम मन्दिर जाया करता था। इस सेवाकार्य के प्रवर्तन के लिए स्वामीजी के आवेग-पूर्ण उत्साह वाक्यों एवं कार्य सम्बन्धी निर्देशों को सुना था तथा रोग की रोकथाम के लिए उनके प्राणों की व्याकुलता को मैंने महसूस किया था, लेकिन उस समय तक मैंने सेवाकार्य आरम्भ नहीं किया था। स्वामी सदानन्द ने ही अपने साथ कार्यकरने के लिए मुझे आह्वान किया था और मैं भी उनके साथ सेवाकार्य कर अपने को धन्य महसूस करता हूँ।

एक दिन प्रातः काल ग्रे स्ट्रीट में देखता हूँ कि स्वामी सदानन्द मेहतर लड़कों को बुला रहे हैं। उस समय मैं अपने घर के दरवाजे पर बैठा था। मेरे पास आकर सदानन्द महाराज ने पूछा—'यह घर तुमलोगों का है क्या ?' मैं बोला—'हाँ, महाराज।' वे कभी मुझको 'भैया' और कभी 'ऐ' कहकर सम्बोधित करते थे। वे मुझसे बोले—'चलो, मेरे साथ।' बाल्टी में कीटाणुनाशक औषधि घोलकर मेहतर-लड़कों को साथ में लेकर मुहल्ले के प्रत्येक घर के भीतर पैखाने की नाली साफ कराने का आदेश उन्होंने मुझे दिया।

कितने ही भद्र गृहस्थ आग्रहपूर्वक हमें घर के भीतर ले गये। उक्त मुहल्ले का भार मेरे ऊपर छोड़कर स्वामी सदानन्द कुछ मेहतरों को साथ लेकर अन्यत्र कार्य करने चले गये। कार्य के दौरान कई सज्जनों ने व्यंग एवं तिरस्कारपूर्वक मुझसे

कहा —'बस, बस। तुमलोगों को अधिक बहादुरी दिखाने की जरूरत नहीं है। औषधि वगैरह हमें दे दो। तुमलोगों को घर के भीतर प्रवेश नहीं करना है।' किसी ने कहा —'अरे लड़को! जाओ! जाओ! घर जाकर पढ़ाई-लिखाई करो। यहाँ तुम्हें मेहतरगिरी करने की जरूरत नहीं है, आदि-आदि। किन्तु हमलोग भी थे वैसे ही जिद्दी इन्सान, सहज छोड़ने वाले नहीं। तर्क-वितर्क कर, समझा-बुझा-कर कितने ही घरों में हमलोगों ने कार्य किया। फिर भी बहुत से घरों में लोगों ने हमें प्रवेश ही नहीं करने दिया।

यह सब कार्य कर जब घर लौटा, तबतक दो बज चुके थे। देखता हूँ, गुप्त महाराज (स्वामी सदानन्द) घर के दरबाजे पर बैठे हैं। उन्हें मैंने सारी बातें बतायीं। सब सुनकर वे बोले —'उन सबसे डरो मत। समाज की अवस्था ही ऐसी है। हमारे तथाकथित शिक्षित लोग क्या अच्छा है, क्या बुरा है, यह अभीतक समझ नहीं पाये हैं। काम करते चलो।'

अगले दिन उन्होंने हमलोगों को दर्जीपाड़ा मुहल्ले में जाने का आदेश दिया। वहाँ भी वही स्थिति धनी लोगों ने हमारी बातें हँसकर उड़ा दीं। यह सब सुनने के बाद गुप्त महाराज ने कहा —'कल, मुहल्ला वगैरह देखना होगा। चलो, कल काठमार वागान मुहल्ले में सुबह से कार्य करेंगे। मैं भी तुमलोगों के साथ कार्य करूँगा।'

'खूब सबेरे मेहतर-जमादारों को एकत्रित कर उन्होंने मुझे बुलाया। काठमार बागान मुहल्ला बड़ा ही विशाल मुहल्ला है-मसजिद बाड़ी स्ट्रीट। बाहर किराने की एवं खाने-पीने की दूकानें आदि हैं: भीतर का परिवेश अत्यन्त ही दुर्गन्ध पूर्ण था। श्रम जीवियों की भयंकर दरिद्रता का चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। जिस ओर भयंकर दुर्गन्ध थी, गुप्त महाराज हमलोगों को उधर ही बुलाकर ले गये। मुहल्ले के पास ही एक संकीर्ण खाली जमीन थी। जहाँ कूड़े-करकट का एक विशाल ढेर था। इसी खाली जमीन के पास ही दो मंजिले एवं तीन मंजिले मकानों की कतारें थीं। सारा कूड़ा-करकट सड़ पचकर दुर्गन्ध फैला रहा था।

गुप्त महाराज दुःख एवं क्रोध प्रकट करते हुए (उन अट्टालिका वासियों के प्रति गाली-गलौज के स्वर में) हिन्दी में कहने लगे-'देख रहे हो, यही है भद्र समाज का कार्य। सब रोगों का बीज इन गरीब लोगों के वास-स्थान के पास फेंककर महामारी फैला रहे हैं! प्लेग, चेचक, कॉलरा-जो भी बीमारियाँ हैं, सभी कूड़े-करकट के सड़ने से ही पैदा होती हैं।"

मेहतरों को उन्होंने कुदाल एवं टोकरी लेकर कूड़ा-करकट वगैरह मेन रोड पर फेंकने का आदेश दिया। परन्तु उनलोगों ने वैसा करने से इन्कार कर दिया। तब गुप्त महाराज मेहतरों को सम्बोधित करते हुए बोले— "अच्छा भैया, तुमलोग बैठे-बैठे देखो। मैं स्वयं सफाई करता हूँ।"

उन्होंने मुझे उनलोगों की बड़ी टोकरी लाने को कहा और स्वयं कुदाल से टोकरी भरकर मुझे उसे मेनरोड पर फेंक आने को कहा। उनके आदेशानुसार मैंने सिर पर एक पगड़ी बाँधी और टोकरी उठाकर कूड़ा-करकट रोड पर फेंक आया। मेहतर लोग मुँह बाये देखते रहे। दो-तीन बार इस प्रकार करने के बाद देखता हूँ कि वे लोग अपने बीच कुछ विचार-विमर्श कर रहे हैं। जबतक मैं वापस आता, तबतक गुप्त महाराज एक टोकरी भरकर रख देते थे। इस तरह आठ-दस बार करने के बाद देखा कि मेहतरों का दल सदानन्द महाराज के पैर पकड़कर रोने के भाव में बोलने लगा— "बाबाजी महाराज, हमलोगों को माफ कीजिए। हमलोग सब साफ कर देते हैं।" महाराज हिन्दी में बोले—"नहीं, नहीं, हमलोग साफ कर लेंगे। तुम

लोग बैठे-बैठे देखो। मैंने तुम लोगों को जो मजदूरी देने का वचन दिया था, वह अन्य दिनों की भांति ही शाम के वक्त दे दूँगा।" वे लोग स्वामी सदानन्द के दोनों पैर पकड़कर बोलने लगे—"नहीं, नहीं, बाबाजी महाराज! आप जब कर रहे हैं, तो हम लोग कैसे नहीं कर सकते?' अन्त में उनलोगों ने उनके हाथ से कुदाल एक प्रकार से मानों छीन ली तथा मेरे हाथ से टोकरी लेकर अत्यन्त उत्साह पूर्वक कार्य करने लगे।

स्वामी सदानन्द महाराज मुझे एक तरफ ले जाकर बोले—"देख रहे हो, भाई। भद्रलोगों की अपेक्षा इनलोगों के प्राणों में कितनी ताजगी है, हृदय कितना संवेदन शील है! और ये बाबू लोग! उनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। तुम कर रहे हो तो करो। बहुत हुआ तो कोई-कोई बोलेंगे 'बड़ी अच्छी बात! अच्छा कार्य कर रहे हैं।" बस इतना भर। और इन गरीब मेहतरों को देखो-बात हृदय में लग गयी तो हाथ से कुदाल छीनकर कार्य करने लगे।"

मैं बोला—"इस पर्वत समान कूड़े के ढेर को को साफ करने में कितने दिन लगेंगे?" उन्होंने कहा—"इस मुहल्ले का कार्य शेष होने में आठ-दस दिन लग जायेंगे। हमलोग क्यों खड़े रहें? आओ, रोगाणु नाशक औषधि वगैरह बाल्टी में घोलकर छिड़काव करें।"

मुहल्ला वाले यह सब देखकर आश्चर्य चकित थे। वे एक-एक कर अपनी दुर्दशा की कहानी सुनाने लगे। स्वामी सदानन्द जी की ओर देखने से, लगा मानो वे उनके दुःख से अत्यन्त दुःखित हैं। उस समय उन्होंने किसी-किसी को चावल अथवा पथ्य वगैरह के लिए सहायता दी।

शाम में जब सब वापस आये तब उन्होने मेहतरों को भोजन एवं मिठाइयाँ लाकर दीं। छोटे बच्चे की तरह किसी की पीठ थपथपा रहे हैं, तो किसी को दैनिक मजदूरी के अतिरिक्त ईनाम दे रहे हैं।

यह अपूर्व भाव देखका उनके प्रति मेरे हृदय में गहरी श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने कहा—"आपने तो कुछ खाया नहीं। आपके लिए भोजन की व्यवस्था करता हूँ।" वे हँस पड़े और बोले—"नहीं भैया, अच्छा, थोड़ा ठण्ढा जल ले आओ। तुम भी स्नान करके कुछ खाओ। तुम्हार भी सारा दिन उपवास में ही कट गया। मैंने उनके लिए एक ग्लास डाब का जल (कच्चे नारियल का जल) ले आया। उन्होंने मुझसे कहा—"स्वामीजी की बातों को कार्य में परिणत करने में ही उनके दर्शन एवं उपदेश श्रवण की सार्थकता है।"

इस बार प्लेग सेवा कार्य कलकत्ते में नहीं, बिहार के भागलपुर जिले में हो रहा है। समय है १९०४ ई० की शीत ऋतु। वहाँ भी स्वामी सदानन्द के सक्षम नेतृत्व में मिशन का सेवा कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हुआ था। इस कार्य के वाद स्वामी सदानन्द का शरीर टूट गया था।

स्वामीजी का सेवा-आदर्श—'शिव ज्ञान से जीव सेवा' श्रीरामकृष्ण द्वारा ही उद्भावित है। इस नवयुग का यह नवीन साधन-पथ है। व्यावहारिक वेदान्त का असली रूप। स्वामी सदानन्द थे इस आदर्श के मुर्त्त-प्रतीक। अन्तिम वयस में भी वे नवीन साधु एवं ब्रह्मचारियों को नर-नारायण की सेवा के लिए उत्साहित करते थे। अन्तिम दिनों में (१९१० ई०) बहुमूत्र रोग से पीड़ित होकर जब वे अत्यन्त दुर्बल हो गए थे, तब उन्हें बागबाजार में एक भाड़े के मकान में ले जाया गया था ताकि अच्छी तरह से उनकी चिकित्सा हो सके। यहाँ भी निवेदिता थी, उनकी प्रबन्धक। उनके ही निर्देश से युवकों का एक दल जी-जान लगाकर उनकी सेवा करने लगे। ये युवकगण गर्व

के साथ अपने को 'सदानन्द का कुत्ता' कहकर अपना परिचय देते थे। यदि उन्होंने युवकों के हृदय में सेवा भावना प्रविष्ट नहीं कराया होता तो वे युवक इस तरह के भाव का परिचय देते क्या ?

संदर्भ ग्रन्थों की सूची :—

१. स्वामीजीर पद प्रान्ते, स्वामी अब्जजानन्द (तृतीय संस्करण, १९८३) रामकृष्ण मिशन सारदा पीठ, बेलुड़ मठ।
२. विवेकानन्द ओ समकालीन भारतवर्ष, शंकरी प्रसाद बसु, चतुर्थ खंड (द्वितीय मुद्रण, बंगाब्द १३८८), मण्डल बुक हाउस, कलकत्ता।
३. Letter of Sister Nivedita, edited by Sankari Prasad Basu, Ist vol. (Ist. Edition, 1982)
४. समाज शिक्षा, मार्च १९८६, 'दीन-बन्धु विवेकानन्द', रामकृष्ण मिशन आश्रम, लोक शिक्षा परिषद, नरेन्द्रपुर।

क्रोध

—स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती
श्री दक्षिणामूर्ति मठ, वाराणसी

आपने कभी किसीको क्रोध के कारण संतप्त होते देखा है ? भौंहों के धनुष तन जाते हैं, साँस की नागिन फुफकारने लगती है। आँखें ऐसी लाल हो जाती हैं, मानो आग बरसा रही हों। फड़कते हुए हाथ जैसे सारे जगत् को उलथ कर रखने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। सामने खड़े व्यक्ति को कच्चा चबा जाना सम्भव न होने के कारण दाँत होठों पर ही आक्रमण कर देते हैं। साधारण रूप से संयत, शान्त रहनेवाले व्यक्ति की आकृति और क्रियाएँ क्रोध के आवेश में बिलकुल बदल जाती हैं। समाज में कुछ लोग तो दुर्वासा के अवतार ही होते हैं। बात-बात पर तुनक कर हो-हल्ला मचाना उनका स्वभाव हो जाता है। क्रोध में व्यक्ति क्या कह जायेगा, कोई ठिकाना नहीं होता।

क्यों आता है क्रोध ? ऐसा क्या कारण है कि व्यक्ति सारी सुध-बुध खोकर क्रोधाविष्ट होता है ? जिन्हें क्रोध नहीं आता उनमें ऐसी क्या विशेषता है ? सन्त एकनाथ के जीवन की एक घटना प्रसिद्ध है। गोदावरी का स्नान करके घर लौट रहे थे तो किसी ने पान खाकर थूँका। छींटे सन्त के शरीर पर पड़े। कुछ कहे-सुने बिना सन्त एकनाथ पुनः स्नान कर आये। उस व्यक्ति ने थूँकने का क्रम जारी रखा और उसी शान्त भाव से सन्त बार-बार नहाते रहे। अन्त में उस दुष्ट ने अपने कुकृत्य पर पश्चात्ताप व्यक्त कर क्षमा माँगी पर सन्त को मानो क्रोध ने स्पर्श ही नहीं किया था। अनेक महापुरुषों के जीवन में से ऐसे प्रसङ्ग उद्धृत किये जा सकते हैं। सामनेवाले व्यक्ति का आचरण कितना भी कष्टप्रद रहा हो, सन्त कभी क्रोधित नहीं होते।

फिर हमें क्रोध क्यों आता है ? आओ, विचार करें। जो घटना घट चुकी, उसे उस प्रकार नहीं होना चाहिए था, ऐसा हमारा आग्रह होता है। किसी व्यक्ति से किसी निश्चित व्यवहार की हम अपेक्षा करते हैं और वह वैसा नहीं करता। फिर क्या, हमारा पारा सातवें आसमान पर चढ़ जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह घटना या सामनेवाले व्यक्ति का आचरण हमारे क्रोध का कारण नहीं होता। हमें क्रोध आता है हमारे आग्रह की पूर्ति के अभाव में। कभी परिस्थितियाँ मनुष्य के वश में नहीं होतीं। तब तो ऐसा लगता है कि बिधाता भी सृष्टि के सन्चालन में गड़बड़ी कर रहा है। वस्तुतः सारी गड़बड़ी हमारे अपने मन की है। अपने दृष्टिकोण के बारे में, अपनी बुद्धि के विषय में हम मान लेते हैं कि यही सही है। ऐसा ही होना चाहिए। कामना की पूर्ति न होने पर हम क्रोधित हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस विश्लेषण को स्पष्ट किया है—'कामात् क्रोधोऽभिजायते'।

मन की मनमानी पर बुद्धि की लगाम न लगी हो तो मन अस्त-व्यस्त होकर नित नयी इच्छा व्यक्त करता है। इच्छा की पूर्ति न होने पर आनेवाला क्रोध ऊपर कहे की भाँति केवल हमारी शारीरिक भाव-भंगिमा को प्रभावित नहीं करता। उसका परिणाम तो बड़ा दूरगामी होता है। थोड़ा सोचिए। बीते हुए क्षण में जो कुछ हो चुका, उसके विरोध में जब हम क्रुद्ध हो जाते हैं तब उस क्रोध के आवेश में हम अपने वर्तमान क्षण को कुछ नष्ट कर देते हैं। जो हो चुका, उसे तो बदला नहीं जा सकता परन्तु उसपर व्यथित होकर वर्तमान क्षण को व्यर्थ गँवाकर हम और एक भूल कर बैठते हैं। किसी भी क्षण अपने मन में उठे विचारों का तटस्थ रूप से अवलोकन करने का प्रयास कीजिए। हम या तो भविष्य के बारे में आशा करते हैं या फिर भूतकाल का चिन्तन करते हैं। प्रायः भूतकाल का चिन्तन क्रोध को जन्म देता है। हम अपने हाथ में आये वर्तमान क्षण का सदुपयोग न कर भूत या भविष्य की सोचते रहते हैं, इस भूल के लिए कभी अपने आप पर क्रोध किया है हमने ?

साधना का एक दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। हम अपने ऊपर क्रोध करना सीख लें। वर्तमान क्षण का सदुपयोग करने का अभ्यास करें। जो परिस्थितियाँ और साधन वर्तमान क्षण में प्राप्त हैं, उन्हें सदुपयोग में लाने का प्रयास आवश्यक है। वर्तमान क्षण का सदुपयोग ही उज्वल भविष्य का कारण बनेगा। भूतकाल का चिन्तन करते हुए हम वर्तमान को तो नष्ट कर ही देते हैं, साथ ही भविष्य के निर्माण का अवसर भी खो देते हैं। अपनी इस भूल के लिए हम अपने आप पर ही क्रोध करें तो अच्छा होगा। प्रभु की बनायी इस सृष्टि में जो कुछ, जहाँ और जैसा है, वह ठीक है, ऐसा निश्चय कर प्राप्त परिस्थिति एवं प्राप्त क्षण का सदुपयोग करने लग जायँ तो क्रोध स्वतः समाप्त हो जायेगा। अपने उत्थान के लिए, लक्ष्य की प्राप्ति के लिए की जानेवाली बड़ी-बड़ी साधनाएँ तो बाद में होती रहेंगी। पहले हम अपने मन के सबसे भीषण दोष से—क्रोध से—मुक्त होने का तो प्रयास करें। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में क्रोध के विषय में बहुत स्पष्ट शब्दों में सावधान किया है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

क्रोध को नरक का एक द्वार कहा गया है। दोनों मार्ग खुले हैं। हम नरक से बचना चाहते हैं तो क्रोध को जीवन में स्थान न दें। नरक जाने की इच्छा हो तो क्रोध करने की खुली छूट है ही। जो क्रोध उपस्थित होते ही हमें शारीरिक और मानसिक कष्ट देता है; उसके कारण नरक में पता नहीं क्या-क्या भोगना पड़ेगा। ●

विवेक चूड़ामणि

भाष्यकार—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

मोक्षस्य आकांक्षा यदि वै तवास्ति
त्यजातिदूराद्विषयान् विषं यथा ।
पीयूषवत्तोष दयाक्षमार्जव-
प्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात् ॥८२

यदि तुम्हें मुक्ति लाभ की आकांक्षा है तो विषयों को विष के समान दूर से ही त्याग दो और सन्तोष, दया, क्षमा, सरलता, शम और दम का अमृत के समान निरन्तर आदरपूर्वक अनुशीलन करो ।

देह में आसक्ति के दोष :

अनुक्षणं यत्परिहृत्य कृत्य
मनाद्यविद्याकृत बन्ध मोक्षणम् ।
देहः परार्थोऽयममुष्य पोषणे
यः सज्जते स स्वमनेन हन्ति ॥८३

अनादि-अविद्या से उत्पन्न देहादि में 'मैं-मेरा-बोध रूप' जो अज्ञानबंधन है, उससे मुक्ति लाभ हेतु प्रतिक्षण साधना करना आवश्यक है । परन्तु ऐसा न कर जो व्यक्ति-इस देह जिस पर दूसरों का अधिकार है (अर्थात मृत्यु के पश्चात जो कुत्ते और सियार का भोज्य है) उस देह के पालनपोषण में आसक्त रहता है, वह व्यक्ति देह पोषण के द्वारा आत्मस्वरूप को भूल जाता है (फलस्वरूप आत्मघाती समान हीन दशा को प्राप्त होता है) ।

देहासक्त व्यक्ति को आत्मज्ञान नहीं होता ।

शरीरपोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति ।
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं तर्तुं स इच्छाति ॥८४

जो व्यक्ति शरीर के पालन पोषण में लगा रह कर आत्मतत्व की उपलब्धि करना चाहता है, वह मानो काष्ठबुद्धि से ग्राह को पकड़ कर नदी पार करने की इच्छा करता है ।

कोई यदि ग्राह के पीठ पर चढ़ कर नदी पार करना चाहे तो, ग्राह उसे गर्दन से पकड़ कर नदी में डूबो कर मार देगा तथा खा लेगा । इस प्रकार देह के भोगों में तत्पर रह कर यदि कोई यह सोचे कि मुक्ति लाभ कर लेगा तो फिर उसे बारम्बार इस संसार में आवागमन करना होगा ।

मोह एव महामृत्युर्मुमुक्षोर्वपुरादिषु
मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमर्हति ॥८५

देह-इन्द्रियादि में 'मैं-मेरा' ज्ञान कर उनको तृप्त करने में लगे रहना मुमुक्षु व्यक्ति के लिए मृत्यु के समान है । (क्योंकि इस प्रकार की आसक्ति के फलस्वरूप जन्म मृत्यु प्रवाह चलता ही रहेगा) जिन्होंने मोह को जीत लिया है—देहादि में आसक्ति को पूर्ण रूप से त्याग दिया है वे ही मुक्तिपद के अधिकारी हैं ।

मोहं जहि महामृत्युं देह दारसुतादिषु ।
यं जित्वा मुनयो यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥८६

अपनी देह, स्त्री-पुत्र-गृह आदि में आसक्ति रूप मृत्यु के कारण का त्याग करो । इस मोह को जीत कर मुनिगण सर्वव्यापी परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त होते हैं । विष्णु - सर्वव्यापी परमात्मा । परम पद=निरतिशय सुखस्वरूप ब्रह्म । "विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः । सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥" क ।।३।९ "जिस व्यक्ति के पास विवेकबुद्धिरूप सारथी है एवं इन्द्रिय समूह का नियन्ता मन रूपी लगाम जिसके वश में है, वे संसार रूपी मार्ग को सहज ही पार कर

लेते हैं। वह मंजिल ही विष्णुरूपी सर्वोत्तम अधिष्ठान है।"

विचार के फलस्वरूप देहाभिमान का नाश—

त्व सर्वधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलं मा
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यामिदं वपुः ॥८७

त्वचा, मांस, रक्त, स्नायु, मेद, मज्जा और अस्थियों का समूह एवं मल मूत्र से परिपूर्ण यह स्थूल शरीर घृणा की वस्तु है।

जिस देह पर मनुष्य को तीव्र आसक्ति है उसके प्रति वैराग्य को बढ़ाने के लिए ही इस देह की निन्दा की गयी है।

पंञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्वकर्मणा ।
समुत्पन्नमिदं स्थूलं भोगायतनमात्मनः ।
अवस्था जागरस्तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः ॥८८

पञ्चीकृत स्थूल भूतसमूहों से जीव के पूर्वकर्मानुसार उसके भोग का स्थान यह स्थूल देह उत्पन्न होती है। इस देह में अहंकार कर जीव स्थूल पदार्थ समूह का भोग करता है। इस देह की प्रतीति ही जीव की जाग्रत अवस्था है।

बाह्येन्द्रियैः स्थूलपदार्थ सेवां
स्रक्चन्दनस्त्र्यादिविचित्ररूपाम् ।
करोति जीवः स्वयमेतदात्मना
तस्मात्प्रशस्तिर्वपुषोऽस्यजागरे ॥८९

जीव बाह्य इन्द्रिय समूहों की सहायता से माला, चन्दन, स्त्री आदि विविध पदार्थों को उपयोग करता है। इसी कारण जाग्रत अवस्था में इस स्थूल देह की प्रधानता या प्रकाश दृष्टिगोचर होता है।

●

बोध कथा

सच्ची सेवा, तीसरा संस्करण

—स्वामी शिवसेवानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, चंडीगढ़

वे बहुत सच्चे तथा प्रेमी साधु थे, पूरी गर्मियों, आने जाने वाले लोगों को शीतल जल पिलाते। कहीं पर कोई कष्ट में पड़ा हो, जाकर उसकी सेवा में लग जाते, कहीं किसी रोगी की सेवा कर रहें हैं, किसी घायल जानवर की चिकित्सा में लगे हैं—सब समय कहीं न कहीं किसी सेवा कार्य में व्यस्त। पता नहीं क्या नाम था उनका, परन्तु लोग उन्हें सेवानन्द कह कर बुलाते थे।

एक बार कुछ भक्तों ने प्रार्थना की—स्वामीजी आप वृद्ध हो रहें हैं, तथा आजकल लोगों के मन से सेवा भावना चली जा रही है।

सेवानन्द जी ने अपनी प्रेम पूर्ण शिशु समान हँसी के साथ पूछा—तब मैं क्या सेवा कर सकता हूँ, मुझे आप लोग आदेश करे।

भक्तों ने कहा—आप एक पुस्तक लिखें जिसमें सेवा करने के लिए साधारण जन को उत्साहित किया जा सके। निश्चय ही ऐसी पुस्तक, फिर आप के द्वारा लिखी गयी, लोगों के लिए प्रेरणा स्त्रोत होगी। भक्तों की प्रार्थना के पीछे सद्भावना देखकर साधु ने उनकी विनती स्वीकार कर ली, तथा "सच्ची सेवा का आधार" नामसे एक पुस्तक लिख डाली। पुस्तक की समाप्ति पर साधु ने पुस्तक

प्रकाशन के लिए धन एकत्रित करना प्रारंभ किया। कुछ समय में ही धन संग्रह हो गया।

अब साधु ने मुद्रण के लिए पुस्तक को छापेखाने में देने का निश्चय किया। वे अभी इसके लिए प्रस्तुत हो ही रहे थे, कि पास के एक गाँव में अग्निकांड में बहुत से घर जलकर स्वाहा हो गये। इस घटना से साधु का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने पुस्तक का प्रकाशन स्थगित कर दिया—तथा पुस्तक प्रकाशन के लिए एकत्रित धन राशि को अग्निकांड से प्रभावित गरीब लोगों में पुनर्वास के लिए बाँट दिया। वे इस सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इस सेवा कार्य की समाप्ति पर साधु पुस्तक प्रकाशन के लिए फिर से धन संग्रह करने लगे। यथोचित् धन संग्रह हो जाने पर साधु ने फिर पुस्तक को प्रकाशन के लिए देने का निश्चय किया-, परन्तु दैवी प्रकोपवश अधिक वर्षा होने से कई गांवों में बाढ़ आ गयी। खड़ी फसलें नष्ट हो गयीं। बहुत लोग इससे प्रभावित हुए।

साधु फिर पुस्तक के प्रकाशन की बात भूल गये तथा संग्रहीत धन राशि लेकर फिर सेवाकार्य में जुट गये, कहीं भोजन, कहीं वस्त्र, कहीं औषध, जहाँ जो आवश्यकता पड़ी-उसी के अनुरूप उन्होंने सेवा की। साधु की निरंतर सेवा देखकर सब लोग दंग रह गये।

इस सेवा के पश्चात् साधु फिर पुस्तक प्रकाशन के लिए धन संग्रह में जुट गये। और प्रभु कृपा से इस बार कहीं कोई दुर्घटना नहीं हुई। कहीं कोई प्राकृतिक प्रकोप नहीं हुआ। अतः इस बार साधु ने पुस्तक प्रकाशन के लिए दे दी। और पुस्तक प्रकाशित हो गयी। जब पुस्तक लोगों के हाथों पहुँची तो इसने सैकड़ों लोगों को सेवा कार्य के लिए प्रेरित किया। परन्तु यह क्या! लोगों ने देखा, पुस्तक पर लिखा था—तृतीय संस्करण। तीसरा संस्करण बहुत से लोग उत्कंठित हो गये। यह क्या! पुस्तक तो पहली बार छपी है, और उस पर अंकित हैं तृतीय संस्करण! यह कैसे संभव हुआ? वे लोग साधु के पास गये—शंका समाधान करने। प्रश्न किया—स्वामीजी, आपकी पुस्तक तो पहली बार छपी है, फिर यह तृतीय संस्करण कैसे हुआ?

साधु के चेहरे पर वही मुस्कान फिर फैल गयी। वे बड़ी विनम्रता से बोले—देखो भाई, जिस आदर्श के प्रचार'प्रसार के लिए यह पुस्तक लिखी गयी थी, उसका यदि मैं ही पालन न करूँ, तो दूसरों के लिए यह प्रेरणा स्रोत कैसे बनेगी? पहली बार जब पुस्तक प्रकाशन के लिए जा रही थी तो अग्निकांड हुआ—मैं अपने आपको रोक न सका। अतः पुस्तक प्रकाशन का पैसा सेवा कार्य में व्यय करना पड़ा। मेरे लिए यह पुस्तक प्रकाशन से कम न था। जो पुस्तक में लिखा था, सेवाकार्य उसका व्यावहारिक रूप था। अतः मेरे लिए यह पुस्तक का प्रथम संस्करण था। दूसरी बार फिर बाढ़ आ गयी। और मुझे फिर पुस्तक के प्रकाशन के लिए संग्रहीत धन उस सेवा कार्य में व्यय करना पड़ा। मेरे लिए पुस्तक का यह दूसरा संस्करण था। दैवयोग से तीसरी बार ऐसा कुछ नहीं हुआ, अतः सेवा के आदर्शों को पुस्तक के पृष्ठों पर उतारा जा सका। मेरे लिए यह तीसरा संस्करण था। और यह सब कहते समय साधु का चेहरा असीम आनन्द से पूर्ण था।

सेवानन्द जी की वाणी सुनकर सबके सिर झुक गये। सत्य है—यह पुस्तक का तृतीय संस्करण ही था।

★

छपरा के महान सन्त

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक – स्वामी विदेहात्मानन्द

श्यामपुकुर में तीन महीने रहने के बाद भी उनके रोग की अवस्था में कोई सुधार न देखकर डॉक्टर सरकार ने उन्हें कलकत्ते के बाहर किसी खुले स्थान में ले जाने की सलाह दी। यह सुनकर भक्तों ने काशीपुर में एक उद्यान-भवन पसन्द किया और अग्रहायण मास की संक्रान्ति के पूर्वदिन उन्हें वहीं ले गये।

ठाकुर के साथ ही साथ हम लोग भी काशीपुर गये। माँ भी गयीं। लोरेन भाई, राखाल भाई, शरतभाई, शशी भाई, (बूढ़े) गोपाल दादा, छोटे गोपाल, निरंजन भाई, काली भाई, बाबूराम भाई—ये सभी लोग घर छोड़कर वहीं रहने लगे। और राम बाबू, सुरेन्दर बाबू, मास्टर महाशय, बलराम बाबू, गिरीश बाबू, काली बाबू—ये लोग सब खरच-बरच करने लगे। सुरेन्दर बाबू मकान का किराया देते, बलराम बाबू ठाकुर का पथ्य देते और राम बाबू हम सबका खर्च चलाते। एक दिन रुपये-पैसे का हिसाब रखने को लेकर बात उठी। लोरेन भाई ने कहा, 'इतना हिसाब-किताब रखने की क्या जरूरत? यहाँ कोई चोरी करने तो आया नहीं है?' परन्तु मैंने कहा, 'तो भी थोड़ा हिसाब रखना अच्छा होगा।' राखाल भाई ने मेरी बात मान ली। गोपाल दादा के ऊपर हिसाब रखने की जिम्मेदारी आ पड़ी।"

यह सुनकर एक भक्त ने कुतूहलवश पूछा "आपने उस दिन क्या कहा था, महाराज?"

लाटू महाराज—"अरे, मैं और क्या कहूँगा! बोला—'देखो भाई, गृहस्थ का पैसा ठाकुर फिजूल में खर्च नहीं होने देते थे। थोड़ा सा हिसाब रखने से यदि झंझट मिट जाय तो वही अच्छा है। हिसाब रखने में आप लोगों का भला कितना समय लगेगा? परन्तु हिसाब न रखने पर बाद में विवाद खड़ा हो सकता है।" इसके बाद वे भक्त की ओर कहने लगे—"वे इतने हिसाबी थे कि क्या कहूँ! दक्षिणेश्वर में एक दिन उन्होंने एक भक्त को एक दीपक जलाने को कहा। भक्त तीन-चार काठी बरबाद करके भी दीपक को नहीं जला पाये। तब उन्होंने स्वयं ही तख्त से नीचे उतर कर दियासलाई जलायी और बोले—'अजी, गृहस्थ लोग बड़े कष्ट से पैसे बचाकर तब साधु को देते हैं। उस पैसे को बेकार खर्च होने देना उचित है क्या?' एक अन्य दिन तम्बाकू सजाने के बाद मैं ज्योंही दियासलाई जलाने को था कि वे डाँटते हुए कह उठे, 'जा रसोई घर से आग ले आ।' वे इसी प्रकार हिसाब के साथ गृहस्थ का पैसा खर्च करने को कहते थे।

"काशीपुर में पहले पहल माँ (श्री सारदा देवी) ही अपने हाथ से ठाकुर का सारा पथ्य और आहार बना देती थीं। परन्तु एक दिन दूध की कटोरी हाथ में लेकर सीढ़ी चढ़ते समय वे गिर पड़ीं। दूध तो गया ही, माँ के पाँव में भी मोच आ गयी। बाबूराम भाई और लोरेन भाई दोनों माँ को सहारा देकर कमरे में ले गये। माँ का पाँव सूज गया। तब हम लोगों को बड़ी मुश्किल हुई। अब उनका पथ्य कौन पकावे? रामबाबू ने एक ब्राह्मण भेज दिया; वही ठाकुर का का पथ्य और हम सबके

लिए भोजनादि बनाने लगा। उस समय ठाकुर ने मुझसे कहा—'देख तू यहाँ की (मेरी) सब चीजें (आहार-पथ्यादि) ले आना।' फिर बोले, 'मेरा मलमूत्र साफ करना।।'' सेवक लाटू यह कहकर, 'हुकुम होते ही साफ करूँगा, मैं तो आपका मेहतर हूँ ही'— उसी दिन से उस कार्य में लग गये।

यह बात सुनकर एक भक्त ने पूछा— "महाराज ! काशीपुर में आपलोग दिन भर उनकी सेवा में ही लगे रहते थे, उपासना नहीं करते थे ?"

भक्त के इस प्रश्न पर लाटू महाराज किंचित् नाराज होकर बोले—"अरे, उनकी सेवा ही तो हमारी उपासना है। हमलोगों के लिए क्या कोई दूसरी भी उपासना है ? तुमलोग सोचते हो कि उपासना एक अलग ही कोई चीज है— इस तरह बैठना होगा, इस प्रकार श्वास छोड़ना होगा, अमुक तरफ मुख करना होगा, इतने मन्त्रों का उच्चारण करना होगा, परन्तु असल उपासना इन सब में नहीं है। उनकी सेवा ही असल उपासना है। वे कहा करते थे, 'उपासना करते समय सोचना चाहिए मानो वे (इष्ट) सामने विराजमान हैं और तुम उनके चरण धो रहे हो, उन्हें नहला रहे हो, उन्हें भोजन करा रहे हो, हृदय में बैठा रहे हो, उन्हें सजा रहे हो सँवार रहे हो, तथा उनके चरणों में फूल चढ़ाकर पूजा कर रहे हो।' हमलोगों का तो वहाँ ऐसा ही होता था।"

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सेवापरायण ये निरक्षर साधक किस भाव से ठाकुर की सेवा करते थे। उन दिनों जितने भी युवकों ने अपने सगे-सम्बन्धियों का परित्याग कर ठाकुर की सेवा में मन-प्राण अर्पित किये थे, उन सब के अन्तर में यही भाव था।

एक दिन बलराम भवन में एक भक्त ने लाटू महाराज से पूछा—"महाराज ! प्रतिक्षण समाधि में रहने वाले ठाकुर के समान ब्रह्मज्ञ व्यक्ति को भी इस प्रकार रोग हुआ; इसका क्या कारण है ?"

लाटू महाराज "मैं क्या जानूँ मास्टर महाशय को कहते सुना है कि अशुद्ध लोगों के दर्शन-स्पर्शन के कारण ही उनकी बीमारी हुई थी। गिरीशबाबू कहते थे, 'यह उनकी लीला है, मानव मानव का दुःख हरण करने के लिए ही उन्होंने यह छल किया था।' रामबाबू ने कहा' 'ऐसी बीमारी न होने पर ठाकुर को पहचानता भी कौन ? स्वस्थ शरीर हो तो सभी भगवान में मन लगा सकते हैं, परन्तु जो अस्वस्थ देह में भी प्रतिक्षण निर्विकल्प समाधि में रह सकें, वे ही अवतार है।' लोरेनभाई कहा करता, 'अरे, हमलोगों की सेवा ग्रहण करने के लिए ही उन्होंने ऐसी बीमारी की है। चिन्ता क्यों करते हो ? उन्हें रोग न होने पर हमें उनकी सेवा का ऐसा सुयोग कहाँ मिलता ? अरे भाई ! सुअवसर मत छोड़ना। सब मिलकर सेवा में ऐसे लग जाओ कि वे हमें छोड़कर कहीं भी न जा सकें।' राखालभाई कहता था, 'वे तो हमारी परीक्षा ले रहे हैं।' शरत्‌भाई का कहना था, 'हम समझें या न समझें, पर इसी के भीतर से एक महान् उद्देश्य सफल हो रहा है।' शशीभाई ने कहा, 'जगत् का दुःख देखकर ईसा सलीब पर चढ़े थे, ठाकुर ने भी जीवों के दुःख से रोग सहन किया।' और केदार बाबू तो ठाकुर के सामने हाथ जोड़कर कहा करते, 'प्रभु, और कितना छलावा करेंगे !' बलरामबाबू कहते, 'और सुन नहीं सकता, दयामय ! तुमलोगों के ठाकुर को बीमारी हुई है, यह बात सुनते-सुनते मेरे कान झुलस गये।' इस पर ठाकुर ने कहा था, 'अजी, जो सहता है वही रहता है, जो सहे वही महाशय।' सब लोग अलग-अलग बातें कहते थे। सब मुझे याद नहीं।"

भक्त— 'आपको क्या लगता है महाराज ?"

लाटू महाराज—"अरे, मनुष्य देह में जन्म लेने से ही देह त्याग करना पड़ता है यह तो जानी हुई

बात है। उन्होंने भी वही किया।"

भक्त—"वे तो चैतन्य महाप्रभु के समान समाधि में लीन भी तो हो सकते थे ?"

लाटू महाराज—"हो सकते थे ! परन्तु इससे उनके भक्तों को कष्ट होता। भगवान भक्तों के मन को दुःख नहीं पहुँचाते, जानते हो न ?"

भक्त—"रोग का कष्ट देखकर क्या आप लोगों के मन में दुःख नहीं होता था, महाराज ?"

लाटू महाराज—"उन्हें क्या कष्ट था ? वे तो कहते, 'दुःख जाने और रोग जाने, मन तू आनन्द में रह।' उन्हें जरा भी कष्ट नहीं था। बीच-बीच में तो उनकी ऐसी अवस्था होती थी कि सारा शरीर पुलकायमान होने लगता था। मैंने तो देखा है कि उस समय वे कैसे आनन्द में रहते थे। जब बोल नहीं पाते थे, तब भी मैंने देखा है कि वे संकेत से समझाते थे। ऐसी अद्भुत घटना होती कि क्या बताऊँ ! बाहर के लोग आकर कहते कि आपको बड़ा ही कष्ट हो रहा है और उसी समय यदि हममें से कोई कमरे में घुसता तो वे समझाते कि मुझे बिल्कुल भी कष्ट नहीं है। यदि सचमुच ही उन्हें दुःख-कष्ट होता, तो फिर क्या वे हमें इतना आनन्द दे पाते ? किसी-किसी दिन वे हमें कीर्तन करने को कहते। कीर्तन में भूल होने पर वे बता देते। हमलोगों से सर्वदा कहा करते, 'अरे, ब्रह्म तो अलिप्त हैं। तीनों गुण उन्हीं में हैं, परन्तु वे उनसे अलग हैं, जैसे वायु गन्ध को फैलाती है पर स्वयं अलग रहती है।' या फिर किसी-किसी दिन कहते, 'अरे ब्रह्म सच्चिदानन्दमय हैं। उनमें शोक, दुःख, जरा, मरण, क्षय, वृद्धि कुछ भी नहीं है।' फिर कभी-कभी वे कहते, 'अरे देखता हूँ कि इसी के भीतर सब कुछ है। वे और जो हृदय में हैं—सब एक हैं, अखण्ड हैं।' जो बीमार होकर भी इस प्रकार रह सकते हैं उन्हें फिर कष्ट कहाँ ? परन्तु तुमलोग तो समझते हो कि उन्हें बड़ा कष्ट होता था। तुमलोग देह को ही समझते हो इसलिए देह का कष्ट देखकर सिहर उठते हो। परन्तु वे (ठाकुर) ऐसा नहीं समझकर सर्वत्र देही को ही देखते थे। अरे, ऐसा न होता (वे आनन्द में हैं ऐसा न देखने पर) तो लोरेनभाई, कालीभाई, तारकभाई जो उनसे इतना प्रेम करते थे, उन्हें छोड़कर क्या रह पाते ?'

एक भक्त—"वे लोग कहाँ गये थे, महाराज ?"

लाटू महाराज—"नहीं जानते ? एक बार वे सभी बोधगया गये थे। वहाँ पेड़ (बोधिवृक्ष) के नीचे बैठकर उन लोगों ने ध्यान किया था। सुना है कि लोरेनभाई ध्यान करते-करते रो उठे थे और बगल में बैठे तारकदादा को जकड़ लिया। वहाँ पर लोरेनभाई ने तारकदादा की देह में एक ज्योति प्रवेश करते देखा था। कालीभाई तो वहाँ ध्यान में काठ जैसा होकर बैठा रहता था। इतना ही क्यों ? यहाँ लौटकर भी वे लोग (प्रायः ही) दक्षिणेश्वर जाकर रात बिता आते थे। एक-एक बार में सात-आठ दिन वहीं रह जाते। जो लोग उन्हें (ठाकुर को) इतना समझते थे, इतना चाहते थे—वे ही लोरेन, राखाल, शरत् और कालीभाई उनका दुःख-कष्ट देखने पर क्या उन्हें छोड़ कर रहना पसन्द करते या रह पाते ?" थोड़ी देर चुप रहकर वे पुनः बोले—"तुमने वेदान्त पढ़ा है न' ?"

भक्त—'थोड़ा-थोड़ा पढ़ा है, महाराज !"

लाटू महाराज—" वहाँ क्या कहा गया है ? जो सच्चिदानन्द को देखते हैं, वे सच्चिदानन्द ही हो जाते हैं—यही बात तो लिखी है न ? वे (ठाकुर) कहा करते थे, '(सच्चिदानन्द) स्पर्शमाणि छूने से सब सोना हो जाता है।' तो भी तुम लोगों का संशय नहीं जाता ?"

इसके बाद उन्हीं भक्त के साथ विविध बातें होती रहीं। 'बलराम मन्दिर में' अध्याय के अन्तर्गत पुनः उसका कुछ अंश दिया जायगा।

अब हम फिर काशीपुर के प्रसंग पर लौट आते

हैं। काशीपुर में नरेन, राखाल, बाबूराम आदि गुरुभ्रातागण कभी-कभी उच्च स्वर में नमकीर्तन किया करते थे। लाटू भी उसमें भाग लेते थे। एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने कीर्तनमण्डली से एक जन को बुलावाया और व्यंगपूर्वक कहने लगे 'तुम लोग तो अच्छे निकले ! कोई तो मर रहा है और कोई हरिबोल की धुन लगाये है।' आये हुए भक्त थोड़े अकचका गये। परन्तु श्रीरामकृष्ण दूसरे ही पल आह्लादपूर्वक बोले, 'अरे, सुर तो ठीक है, पर अमुक स्थान पर तुललोग एक कड़ी भूल गये थे। वहाँ पर उस कड़ी को भी गाना चाहिए।' उस युवक ने लौटकर अपने साथियों को यह बात बतायी।··· तब उन लोगों ने मिलकर उद्दाम कीर्तन शुरू किया। [श्रीयुत महेन्द्रनाथ दत्त के (बंगला) श्रीमत् विवेकानन्द स्वामीजीर घटनाबली ग्रंथ से संकलित।]

कीर्तन में अत्यधिक भाग लेने पर भी साधक-लाटू उसी समय अपना भावोन्माद प्रकट नहीं होने देते थे। ठाकुर के भक्त श्री वैकुण्ठनाथ सान्याल ने (हमारे अनुरोध पर जो नोट भेजा है उसमें) निम्नलिखित बातें हैं—

काशीपुर उद्यान में निवासकाल में श्रीयुत महेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द के भाई) ने छपरा जिले के इस निरक्षर सेवक में एक नवीन भाव देखा था। यह बात उन्होंने अपने 'तापस-लाटू महाराजेर अनुध्यान' नामक ग्रन्थ में लिखी है—"लाटू को मैंने देखा कि वह सबके साथ मिलकर बैठा है और समानतापूर्वक बातें कर रहा है। पहले वह सबको बाबू कहकर पुकारता था, यथा नरेनबाबू आदि, पर उस समय देखा उसमें वह भाव नहीं था। 'ओ लोरेन !' 'ओ शरत् !' 'ओ राखाल !'—इस प्रकार सम्बोधित करते हुए वह वर्तालाप कर रहा था। सुनकर पहले तो मैं थोड़ा विस्मित हो गया कि लाटू आज इस तरह आचरण क्यों कर रहा है ! अतः धीरे-धीरे मैं उसका निरीक्षण करने लगा। परन्तु तभी मेरे मन में और एक भाव आया। मैंने देखा कि लाटू के मुख पर अब पहले के समान दीनता, संकोच, भय आदि का भाव नहीं है। उसके चेहरे पर प्रफुल्लता थी, हृदय में बल था, गले की आवाज बदल गयी थी; मानो पहले का जीवन चला गया हो और उसे नवीन जीवन, नवीन लोक, नवीन प्राण और नवीन कण्ठस्वर मिला हो। यह देखकर मैं सोचने लगा—क्या ही अद्भुत परिवर्तन है !"

कहते हैं कि समाधि में मनुष्य का आमूल परिवर्तन हो जाता है। क्या इसीलिए काशीपुर में साधक-लाटू में अद्भुत परिवर्तन आया था ? हमने जहाँ तक सुना है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि काशीपुर में साधक-लाटू को समाधि का प्रथम आस्वादन मिला। लगता है इसी कारण उनके स्वभाव ने मानवीय संकीर्णता से मुक्ति पाकर शुद्ध सात्त्विक दिव्य रूप ग्रहण किया। इसमें सन्देह नहीं कि समाधि के अपूर्व रस का आस्वादन करनेवाले को दिव्यजीवन की उपलब्धि होती है।

साधकगण सामान्यतः दीक्षा के अवसर पर ही दिव्यजीवन का बीज पा लेते हैं। वही बीज साधनाकाल में अंकुरित और पल्लवित होकर समाधि में पुष्पित हुआ करता है। समाधिरूपी कुसुम सौरभ से साधकों का मन दिव्य आनन्द से ओत-प्रोत हो उठता है। तब साधकगण दिव्य अह्लादिनी शक्ति से परिपुष्ट होकर अपने मानव सुलभ मोह और संकोच से मुक्त हो जाते हैं। उसी क्षण प्रत्येक साधक में उदासीन और अभीः अवस्था दीख पड़ती है। तब उनका पाप-पुण्य, भला-बुरा, ऊँच-नीच आदि भेद-भाव रूपी जागतिक ज्ञान तिरोहित हो जाता है। वस्तुतः समाधि में ही साधकगण समझ पाते हैं कि ज्ञान क्या है ? सत्य

क्या है ? आनन्द क्या है ? और इनके बीच आपस में क्या सम्बन्ध है ? क्योंकि इनमें से प्रत्येक वहीं पर अपनी महिमा में स्वतः-उद्भासित होकर विराज करता है। वहाँ पर ज्ञाता और ज्ञेय के सापेक्ष होकर ज्ञान का आविर्भाव नहीं होता, वरन् साधकगण उस समय उभय-निरपेक्ष के स्वरूप-अवस्थान में निवास करते हैं। एक वाक्य में कहें तो उस समय साधकगण माया-रहित होकर तत्काल 'स्व' स्वरूप को प्राप्त होते हैं। श्री रामकृष्ण देव कहते थे—"समाधि का जगत् ही अलग है। ··· इस जगत् की बात मुख से नहीं कही जा सकती। ··· ब्रह्म ज्ञान जिसे होता है वह फिर खबर नहीं दे सकता।" दृष्टान्त के रूप में वे कहा करते—"चार मित्रों ने घूमते-घूमते ऊँची दीवार से घिरी एक जगह देखी। भीतर क्या है यह देखने के लिए सभी बड़े उत्सुक हुए। एक दीवार पर चढ़ गया। झाँक कर जो देखा तो वह दंग रह गया, और 'हा हा हा' करते हुए भीतर कूद पड़ा। फिर कोई खबर नहीं दी। इस तरह जो भी चढ़ा वही 'हा हा हा' करते हुए कूद गया ! फिर खबर कौन दे ?"

काशी में एक दिन एक भक्त ने लाटू महाराज से पूछा "महाराज, भाव और समाधि में क्या भेद है ?"

उसके उत्तर में लाटू महाराज ने कहा था—"भाव में साधक अवाक् होकर आनन्द का खेल देखता है, वहाँ साधक स्वयं आनन्द को ही देखता रहता है। परन्तु समाधि में साधक स्वयं आनन्दमय हो जाता है, देखने-वाला कोई रह नहीं जाता !"

भक्त ने और भी अनेक प्रश्न किये थे, जिन्हें हम यथास्थान देंगे। उस दिन के वार्तालाप से निम्नलिखित बातें प्रस्तुत हैं—

"जानते हो ! साधना काल में ज्योति-वोति देखना भी कुछ नहीं है—वह सब देखने से केवल विश्वास मात्र दृढ़ होता है। जब देहबोध का लोप हो जाता है और अन्तर शुद्ध पवित्र हो जाता है, तभी मालूम होता है कि ज्योति के उस पार एक मुल्क है - जहाँ की बात बुद्धि-विचार के द्वारा नहीं जानी जा सकती और मुख से भी उसे कहा नहीं जा सकता। एक दिन काशीपुर में मैं उनके सिर सहला रहा था। उस समय मेरे सामने वही जगत् खुल गया। जगत् में जो मैंने देखा, उन्हें आँखें धारण नहीं कर सकीं, जो आस्वादन मिला उसे जिह्वा ग्रहण न कर सकी। परन्तु मैंने हर एक अनुभव किया।"

भक्त—"इसके पहले भी क्या आपको कभी उस जगत् की खबर मिली थी, महाराज ?"

लाटू महराज—"नहीं, इसके पहले मुझे उस जगत् की खबर नहीं मिली थी।"

भक्त—"इसके पहले भी तो आपने ज्योति देखी थी, मूर्तिदर्शन किया। उस दिन का दर्शन क्या इन सबसे कुछ अलग हुआ था ?"

लाटू महराज—"देखो, ये सब बातें पूछनी नहीं चाहिए और किसी के सामने कहना भी नहीं चाहिए। यदि तुम्हें उस जगत् की खबर जानने की इच्छा हो, तो अबसे नाम-जप, ध्यान-धारणा में लग जाओ। गुरु कृपा से एक न एक दिन तुम्हें भी समाधि लग जायगी। तब तुम स्वयं ही सब समझ जाओगे, मुझसे कुछ भी पूछना नहीं होगा।"